कमलमणि-ग्रंथमाला—४

शा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी

लेखक और संपादक

व्रजरत्नदास बी.ए.

प्रकाशक

कमलमणि ग्रंथमाला कार्यालय,

काशी

संस्करण] १९८९ [मू० ॥=)

भूमिका

हिन्दी गद्य-साहित्य के विकास पर दृष्टि दौड़ाने से ज्ञात होता है कि इसके आधुनिक अर्थात् खड़ी बोली के साहित्य का आरंभ अठारहवीं शताब्दी ईसवी के साथ साथ हुआ है। यद्यपि बोल चाल में गद्य ही का प्रयोग होना अनिवार्य है पर साहित्य में सर्वदा पद्य ही से श्रीगणेश होता है। भावोद्रेक स्वभावतः काव्यमय है। आधुनिक गद्य-साहित्य का यह आरंभ राजनैतिक कारणों से हुआ है। जिस प्रकार हिन्दू-मुसल्मानों के संसर्ग से 'उर्दू' व्यावहारिक भाषा की उत्पत्ति अनिवार्य थी उसी प्रकार देशी-विलायती सम्पर्क के लिए एक दूसरे की भाषा का ज्ञान आवश्यक था। विद्या-प्रिय अंग्रेज़ों ने व्यवहार के लिए उर्दू सी एक नई भाषा न गढ़ कर यहीं की भाषा सीखने का निश्चय किया और इस कार्य के लिए पुस्तकें तैयार कराने को फोर्ट विलिअम के अध्यक्ष डा० जौन गिलक्राइस्ट नियुक्त हुए। यहीं हिन्दी तथा उर्दू के अनेक गद्य ग्रन्थ तैयार हुए। इस कौलेज के हिन्दी लेखक पं० लल्लूलाल जी तथा पं० सदल मिश्र थे। पर इसी समय के लगभग लखनऊ तथा प्रयाग में दो अन्य सज्जन भी इसी कार्य में दत्तचित्त हो रहे थे जिनके नाम सैयद इंशाअल्लाह खाँ तथा मुं० सदासुखलाल था। इस प्रकार ये चारों सज्जन हिन्दी खड़ी बोली के गद्य साहित्य के प्रथम आचार्य माने जाते हैं जिनमें से स्वसम्पादित प्रेमसागर की भूमिका में लल्लूलाल जी की जीवनी पर प्रकाश डाला जा चुका है। उक्त ग्रन्थ काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित किया गया है।

वहीं से सदल मिश्र का नासिकेतोपाख्यान और इंशा की रानी केतकी की कहानी भी प्रकाशित हो चुकी है। अन्तिम पुस्तक के देखने से मुझे संतोष नहीं हुआ। इंशा की जीवनी, जो कुछ ऐसी विचित्र है कि वह प्रत्येक मनुष्य के लिए पठनीय है, इसमें बहुत ही संक्षेप में लिखी गई है। कहानी में भी अशुद्धियाँ रह गई हैं और इंशा की कुछ उर्दू रचना भी देकर उनके समय की भाषा पर हिन्दी पाठकों को विचार करने का अवसर नहीं दिया गया है। इन्हीं विचारों से इस पुस्तक के इस संस्करण के प्रकाशन का प्रयास किया गया है।

इंशा की जीवनी लिखने का केवल एक ही साधन मुख्य है और वह प्रो० आज़ाद का आबेहयात है। एक तो इंशा का जीवन ही कुछ औपन्यासिक रूप का था और उस पर प्रो० साहब की नमक मिर्च लगी हुई लेखनी से उसका वर्णन किया गया जिससे उसमें बड़ी रोचकता आ गई है। इस जीवनी में उसी का अनुकरण करते हुए भी कुछ गाम्भीर्य लाने का प्रयत्न किया गया है। इनकी जीवनी के विषय में कुछ विशेष अनुसंधान किया गया है पर कुछ नया प्रकाश नहीं पड़ा है। इनकी रचनाएँ बहुत हैं पर उनमें से कुछ ही ऐसे गज़ल चुन लिए गए हैं जिनमें हिन्दी शब्दों का मेल अधिक और फारसी तथा अरबी का कम है। पाद टिप्पणी में कठिन शब्दों के अर्थ भी दे दिए गए हैं।

अन्त में 'रानी केतकी की कहानी या उदैभान चरित' दिया गया है जिसके कारण ही 'इंशा' को हिंदी साहित्य के इतिहास में अच्छा स्थान मिला है। इसके सम्पादन में निम्नलिखित प्रतियों से सहायता ली गई है।

१. प्राचीन हस्तलिखित प्रति की प्रतिलिपि, जो का० ना० प्र० सभा में सुरक्षित है।

२. उर्दू में प्रकाशित प्रति की प्रतिलिपि।

३. सं० १९०३ वि० में कलकत्ते की प्रकाशित प्रति।

४. सन् १८७४ ई० में प्रकाशित राजा शिवप्रसाद का गुटका।

५. सन् १९०५ ई० में लखनऊ में प्रकाशित प्रति।

६. सभा द्वारा प्रकाशित और रायसाहब बा० श्यामसुंदर दास बी० ए० द्वारा सम्पादित प्रति।

इस प्रकार यथासाध्य जितने संस्करण प्राप्त हो सके, प्राप्त किये गए। इन पर तथा अन्य संस्करणों पर कुछ नोट लिखना आवश्यक है। प्रथम दोनों तो वे ही हैं जिनकी सहायता से सभा वाला संस्करण तैयार किया गया है और उनकी सहायता के लिए मैं सभा और उस संस्करण के सम्पादक का आभारी हूँ। यह कहानी लगभग सं० १८६० वि० (सन् १८०३ ई०) के लिखी गई थी और सबसे प्राचीन छपे हुए संस्करण का हवाला पूर्वोक्त तीसरी प्रति से मुझे ज्ञात हुआ। यह संस्करण भी सन् १८४६ ई० का है और प्राप्त संस्करणों से सबसे प्राचीन होते हुए भी प्राचीन तर संस्करण का उल्लेख करता है। इस कारण इसे विशेष महत्व का समझ कर सामने के पन्ने पर इसके मुख पृष्ठ की पूरी नकल दे दी जाती है। इसके पण्डित सम्पादक ने शब्दों को कुछ संस्कृत रूप दे दिए हैं और आरंभ में गणेश जी की स्तुति में एक सोरठा लिखा है।

विघन हरण गणराय मूषकवाहन गजवदन।
गणपति चरण मनाय तबै काज कछु कीजिए॥

श्री श्रीराजराजेश्वरी सहाय ॥

कहानी रानी केतकी की

ठेठ हिन्दुस्थानी भाषा में जो आगे मुन्शी हरीराम पण्डित जी लखनऊ वासी ने संग्रह किई थी सो अब कहीं देख नहीं पड़ती और गुणग्राहकों को ऐसे पदार्थ के पढ़ने सुन्ने की बड़ी चाहत रहती है इसलिए श्रीयुक्त कृपाकर दयावर श्रीमधुसूदनजी जयपुर निवासी स्कूलबुक सुसैटी के ग्रंथ शोधक और परम मित्र अति सुबुद्धि श्रीयुक्त लक्ष्मीनारायण पण्डित इसटाम्प मुन्शीजी की इच्छा से

श्रीविष्णुनारायण पण्डित ने मुद्राङ्कित करवाया ।

मोल कम्पनी सिक्का आठ आना ॥

यह ग्रंथ जिनको लेने की वासना होवे उन्हें महानगर कलिकत्ते बांसतले की गली ३० संख्या इस यन्त्रालय में मिलेगी

सम्बत् १९०३ । पौष सुदी ईकम ॥

कहीं कहीं छापे की अशुद्धि भी रह गई। जैसे 'जड़ावूतोड़ों की जोड़ी'। पुस्तक का अंत भी इस प्रकार किया गया है-

'* शुभमस्तु सर्वजगताम् *

यह कहानी बहुत दिन पहिले मुनशी हरी राम पण्डित जी ने देवनागरी अक्षर में छापी थी पर अब नहीं मिलती और बहुत लोगों को ठेठ हिन्दी बोली में इन दिनों कहानी पढ़ने की चाह रहती है इसलिए मुनशी जी की मूल कहानी को दूसरी बेर छ सौ चालीस पुस्तक छपवाया।'

इस कहानी को तीसरी बार लखनऊ के लामार्टिनिएर कॉलेज के प्रधानाध्यापक मिस्टर शिंट ने बंगाल एशाटिक सोसाइटी के जर्नल के सन् १८५२ के २१ वें भाग में अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित किया था। कहानी फारसी अक्षरों में छपी थी और अपूर्ण थी। कलकत्ते के बिशप्श कौलेज के प्रोफेसर रेवरेंड स्लेटर ने २४ वें भाग में इसे पूरा किया। मि० शिंट ने इस पुस्तक पर अपनी यह सम्मति दी थी कि यह हिन्दी शब्दों तथा महाविरों का कोष है और दूसरे इससे इनके प्रयोग का ठीक ज्ञान प्राप्त होता है।

इसके अनन्तर सन् १८७४ ई० में राजा शिवप्रसाद के गुटका के तीसरे भाग में यह 'कहानी ठेठ हिन्दी में' के नाम से प्रकाशित हुई। इसमें इन्होंने शीर्षक और कहानी सबको एक में मिला दिया है और कुछ घटाया बढ़ाया भी है। वाक्ययोजना में भी समयानुकूल कुछ अदल बदल कर दिया है।

इस संस्करण के बाद सन् १९०५ ई० में लखनऊ के ऐंग्लो ओरिएंटल प्रेस ने इस कहानी को 'उदैभान चरित' के नाम से प्रकाशित किया। इस पर संपादक या प्रकाशक किसी का

नाम नहीं दिया है। इसकी एक प्रति सभा के पुस्तकालय में है और इस प्रति की प्रशंसा भी सभा के रिपोर्ट में हो चुकी है। इसका संपादन सोसाइटी के जर्नल तथा गुटका और एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर हुआ है। आरंभ का कुछ अंश छोड़ दिया गया है जिसमें ईश्वर की स्तुति है। यह धर्मांधता के कारण हुआ ज्ञात होता है।

अंत में सन् १९२५ ई० में सभा का संस्करण प्रकाशित हुआ जिसके संपादक हिंदी के एक प्रसिद्ध दिग्गज विद्वान हैं। इसमें अट्ठारह पृष्ठ की भूमिका में इंशा का हिंदी-साहित्येतिहास में स्थान निश्चित किया गया है, पर कहानी का पाठ केवल दो उर्दू-प्रतियों के आधार पर ठीक किया गया है। इससे ठीक उर्दू न पढ़ सकने के कारण इसमें बहुत अशुद्धियाँ रह गई हैं। दोनों के पाठ मिलाने ही से सब आप स्पष्ट हो जाएगा। इनके सिवा लीथो में भी कई संस्करण निकल चुके हैं जिन में एक सचित्र भी था।

उर्दू साहित्य का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि उसके औपन्यासिक अंग का इतिहास बहुत प्राचीन नहीं है और प्रायः इसी के समकालीन है। साथही यह भी कहा जा सकता है कि मौलिकता की दृष्टि से यह ठेठ हिंदी की कहानी उर्दू की मौलिक कहानियों से प्राचीनतर है। उर्दू की आरम्भिक कहानियाँ फारसी या फारसी द्वारा संस्कृत कहानियों की अनुवाद मात्र हैं इस लिए एक मुसलमान सज्जन के उर्दू में न लिखकर हिंदी में मौलिक कहानी लिखना उस समय भाषा के प्रचार के आधिक्य का द्योतक है। इस कहानी के लिखने के समय 'इंशा' नवाब अवध के क्रोधानल में पड़ चुके थे और इस लिए किसी आश्रयदाता को खुश करने के बदले सर्व-

साधारण के लिए यह कहानी उन्होंने 'ठेठ हिंदी' में लिखना उचित समझा था।

मौलवी सैयद अफ़ज़लुद्दीन अहमद ख़ाँ 'शहबाज़' अज़ीमाबादी अपनी पुस्तक "फ़िसानए खुर्शेदी" की भूमिका में लिखते हैं कि 'हुस्नो इश्क़ की जितनी क़दीम तसनीफें हैं उनमें ग़ालिबन् कोई भी नापाक ख्यालात और दूर अज़ अक़्ल मंसूबों से खाली नहीं।......उनसे आलमे इनसानी को सिवा ज़रर के कोई बड़ा फायदः हासिल नहीं होता।' ये आक्षेप उपन्यासों ही पर समझने चाहिए क्योंकि उसी पर मौलवीसाहब लिख रहे हैं। इन आक्षेपों में यह कहानी कम-से कम अश्लीलता से परे है। एक शब्द 'रंडी' अवश्य कानों में खटकता है जिस पर आगे विचार किया जाएगा। असंभव घटनाओं का समावेश तो अवश्य है और ऐसा पुराने उपन्यासों में प्रायः मिलता है। उर्दू की मसनवियों तथा पुरानी प्रेम कहानियों के कथावस्तु यदि संक्षेप में लिखे जायँ तो उनका सार यही निकलेगा कि अकस्मात् मिलने से प्रेमोत्पत्ति हुई, जादू आदि के ज़ोर से पशु बनाकर या ऐसीही घटना से विरह हुआ और फिर दोनों मिल गए। वैसीही कथावस्तु इस कहानी में है जो, यही कहना चाहिए कि, विशेष रोचक नहीं है। तात्पर्य यह कि घटना-संगठन बिलकुल साधारण है।

अब देखना चाहिए कि इनकी वर्णनशैली कैसी है। इतना तो पहिले ही कह देना चाहिए कि, जैसा कि लिखा भी जा चुका है, यह हिंदी की रचना उर्दू के कवि तथा फारसी अरबी के विद्वान द्वारा हुई है जिससे कोई भी परिपक्व बुद्धि का पुरुष इसमें भाषा का चमत्कार या विचार भाव आदि के प्रकटीकरण में प्रौढ़ता पाने की आशा नहीं करेगा। यह कुशल

चित्रकार द्वारा सिला वस्त्र सा है। प्राकृतिक वर्णन तो नाम को भी नहीं है। स्त्री पुरुष के शृङ्गारादि का वर्णन भी शिथिल और साधारण कोटि का है। विवाहादि की तैयारी का वर्णन कई पृष्ठों में कर डाला है पर वास्तव में उन सब को पढ़ने पर किसी प्रकार की तैयारी का चित्र आँखों के सामने नहीं खड़ा होता प्रत्युत वाग्जाल मात्र समझ पड़ता है। विरहवर्णन में करुण रस नाम मात्र को है। सारांश यह कि यह कहानी खिलवाड़ में लिखी गई थी और केवल खिलवाड़ मात्र है। इसका महत्व केवल इसकी प्राचीनता में है।

इन्होंने आरंभ में लिखा है कि 'गँवारीपन न आ जाय' पर बहुत से शब्द जैसे पसेरियन, जेंवर आदि अब पढ़ने में ग्रामीण मालूम होते हैं। रागों, बाजों, नावों आदि की कहीं कहीं सूची सी दे डाली है। इस कहानी के प्रयुक्त शब्दों के पढ़ने से यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि आज से सवासौ वर्ष पहिले 'भले लोग अच्छों से अच्छे' किस प्रकार उच्चारण करते थे और उनकी भाषा कैसी रहती थी। इससे यह कहानी भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी महत्व की है, क्योंकि यह हिंदी बोलनेवाले समाज से बाहर के एक पुरुष द्वारा केवल उनकी भाषा के मनन करने पर लिखी गई है।

एक शब्द लालटैन का इस कहानी में प्रयोग हुआ कहा जाता है, जिसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध है। चाहे जो हो वह 'हिंदवी छुट' अवश्य है इस लिए इसका प्रयोग कम से कम 'इंशा' ने न किया होगा और केवल उर्दू लिपि की कृपा ही ने दूसरे शब्द को यह शब्द बना डाला है। उर्दू में लालपटों और लालटेनों लिखकर बिंदियाँ निकाल दिया जाय तो दोनों का स्वरूप ठीक एक सा रहेगा, जो इस भ्रम का कारण है।

इस शब्द का उसी अर्थ में उसके आगे दो तीन बार प्रयोग हुआ है पर वहां वे लालपटों ही पढ़े गए हैं। इसका अर्थ यदि लाल कपड़ा ही किया जाय तो 'लालपटों की झमझमाहट रातों को' कैसे दिखाई देगी और उनमें से 'हथफूल, फुलझड़ी, जाही, जुही, कदम, गेंदा, चमेली, इस ढब से छूटने लगे। और पटाखें' कैसे उछल उछल फूटेंगे। यह उसी प्रकार की कोई खिलौने सी चीज़ है जैसी आजकल भी मेलों में रंगीन कागज़ आदि की बनी हुई मिलती है जिसमें रोशनी बाल कर लोग सजावट के लिए टाँगते हैं। यह मुसलमानों में अब भी विशेष प्रचलित है।

'रंडी' शब्द का इस कहानी में चार बार प्रयोग हुआ है। प्रथम दो रानी केतकी के साथ की झूलने वालियों की लिए, तीसरी बार इंद्र की अप्सरा के लिए और चौथी बार मदनबान के लिए खिलवाड़ में प्रयुक्त हुआ है। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि यह शब्द अश्लील अर्थ में न लेकर खिलवाड़िन (सं० रन=क्रीडा करना) के अर्थ में प्रयोग किया गया है।

'आतियाँ जातियाँ जो साँसें है', 'घरवालियाँ बहलातियाँ हैं', 'चुलबुलियाँ,' नाचती गाती बजाती कूदती फाँदती धूमें मचातियाँ अँगड़ातियाँ जँभातियाँ उँगुलियाँ नचातियाँ और ढुली पड़तियाँ थीं।' इन उद्धरणों से यह मालूम होता है कि कृदंत क्रियाओं तथा विशेषणों में भी उस समय बहुवचन सूचक चिन्हों का प्रयोग होता था पर यह लेखक की इच्छा पर निर्भर था। अंतिम उद्धरण के कुछ क्रियाओं में ऐसे सूचक चिन्ह बनाए गए हैं और कुछ में नहीं। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिए कि ऐसे चिन्ह केवल स्त्रीलिंग ही में प्रयुक्त क्रियाओं और विशेषणों में लगाए जाते थे। इस ग्रंथ में

संगृहीत १८ तथा १९ वें ग़ज़ल में ऐसे प्रयोग पठनीय हैं। उर्दू-साहित्य के आरम्भिक काल में इस प्रकार के प्रयोग बहुत पाए जाते हैं जैसे—

आँखें जो खुल गईं वही रातें हैं कालियाँ।
क्या ख़ाक सो के हसरतें दिल की निकालियाँ॥
बारहा वादों की रातें आइयाँ।
तालओं ने सुबह कर दिखलाइयाँ॥

प्रो० आज़ाद आबेहयात पृ० १३२ पर लिखते हैं कि 'इस काल में भूत कालिक बहुवचन स्त्रीलिंग की दोनों क्रियाओं में बहुवचन होता था, जैसे औरतें आतियाँ थीं और जातियाँ थीं'। उस काल में हिंदी के जो विशेषण उर्दू में काम आते थे उनमें भी बहुवचन के चिन्ह लगाते थे जैसे कड़ियाँ, एकों इत्यादि। इंशा के समय से ऐसे प्रयोगों का वहिष्कार होने लगा था।

इस कहानी की भाषा ठेठ हिन्दी है पर उर्दू वाक्ययोजना की शैली ही में लिखी गई है। हिंदी-साहित्य-दुर्ग के फाटक पं० केदारनाथ पाठक का कथन है कि इस कहानी का किसी समय इतना प्रचार था कि इस को कुछ लोग यादकर लय के साथ आल्हा की भाँति अन्य लोगों को सुनाया भी करते थे तथा इस प्रकार जीविकोपार्जन करते थे। इस कहानी के विषय में इतना ही लिखना अलम् है और इस रूप में यह हिन्दी साहित्य प्रेमियों के सन्मुख उपस्थित की जाती है।

काशी
विजयादशमी
सं० १९८५

विनीत
ब्रजरत्नदास

सैयद इंशा का जीवनचरित्र

[उपक्रम]

किसी कवि ने कैसी खूबसूरती से कहा है कि—

यह चमन योंही रहेगा और हज़ारों जानवर।
अपनी अपनी बोलियाँ सब बोलकर उड़ जाएँगे॥

ठीक ही है, यह साहित्यरूपी सुन्दर वाटिका ज्यों की त्यों बनी रहेगी और सहस्रों पक्षी, जिनमें कोकिल, पिक आदि से मीठे बोलनेवाले और कौए से काँव काँव करनेवाले भी रहेंगे सब अपनी अपनी तान अलाप कर चले जाएँगे। कोई करे क्या! किसी का वश नहीं चलता।

लाई हयात आए क़ज़ा ले चली चले।
अपनी खुशी न आए न अपनी खुशी चले॥

बस, यह भी एक सांसारिक दृश्य मात्र है जिसके नाट्य पात्र रङ्गस्थल पर आते और चले जाते हैं और दर्शकगण भी तालियाँ पीटते अपने अपने घर चले जाते हैं। उनमें से अनेक दर्शक यह भी विचारते होंगे कि एक दिन उन्हें भी इस महान रङ्गस्थल पर से चला जाना होगा। उन्हीं दर्शकों

में से एक ने कहा भी है कि 'देखत हमारे चले जात हैं सबैही जन देखत सबहि के हमहुँ चले जाएँगे ।'

वस्तुतः अनन्त काल से ऐसाही होता रहा है और होता रहेगा तथा इसके लिए शोक करना वृथा है। परन्तु इन जाने वालों में कभी कभी ऐसे पुरुष भी होते है कि शताब्दियाँ व्यतीत होने पर भी लोग उनके विचारों और कृतियों की याद किया करते हैं। ऐसेही जीवों का इस संसार रूपी रङ्गस्थल पर आना सार्थक है जो अपना कुछ स्मारक छोड़ जाते हैं। ऐसेही पुरुषों में सैयद इंशाअल्लाह खाँ 'इंशा' भी होगए हैं जिन्हें उर्दू साहित्यवाटिका का बुलबुले-हजारदास्ताँ समझना चाहिए। इनका जीवनचरित्र पढ़ जाने पर यह ज्ञात हो जाएगा कि इन्हें हज़ारदास्ताँ लिखना उचित है या नहीं। इंशा बुलबुल के समान कितने प्रकार के नए नए राग निकालते थे और इन्हीं कारणों से ये उर्दू के अमीर खुसरो माने जाते हैं।

[आरंभिक जीवन]

सैयद इंशाअल्लाह खाँ के पिता हकीम मीर माशाअल्लाह खाँ नजफ़ी जाफ़री दिल्ली के रहनेवाले थे और कविता में अपना उपनाम 'मसदर' रखते थे। इनके पूर्वज कुछ दिनों पहिले समरकंद से आकर काश्मीर में बस गए थे पर अमीरुल्उमरा नवाब जुल्फ़िक़ार खाँ के समय में मीर माशाअल्लाह खाँ काश्मीर से

दिल्ली चले आए और यहाँ रह गए। नवाब ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ का दिल्ली में सं० १८६५ से सं० १८७० तक दौरादौर था और इसी बीच ये दिल्ली आए होंगे। कुछ समय के अनन्तर ये दिल्ली के बादशाह के दरबारी हकीम हो गए क्योंकि इनके पूर्वजों में भी कई इस पद पर नियुक्त हो चुके थे और झंडा भी मिला था। इनकी कविता के उदाहरण लीजिए—

> ख़ुदा करे कि मेरा मुझसे मेहवाँ न फिरे।
> जहाँ फिरे तो फिरे पर वो जानेजाँ न फिरे॥
> एक दुज़दीदः निगह से जो छिपाईं आँखें।
> चोर ज़ख्मों में पड़े दिल की भर आईं आँखें॥

मीर माशाअल्लाह ख़ाँ बड़े मिलनसार, सङ्कोची और उदार पुरुष थे। जब चगत्ताई साम्राज्य अत्यन्त निर्बल हो गया तब इन्हें मुर्शिदाबाद जाना पड़ा और वहाँ के नवाब के दरबार में भी यह बड़े सम्मान के साथ रहे। मुर्शिदाबाद ही में इंशाअल्लाह ख़ाँ का जन्म हुआ और पुराने समय के रईसों के पुत्रों की तरह इन्हें भी अच्छी शिक्षा मिली। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' सैयद इंशा की मेधाशक्ति प्रबल थी, जिससे इन्हों ने बहुत जल्द पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर ली। इनके समान प्रतिभाशाली मनुष्य संसार में बहुत कम पैदा होते हैं और वे जिस विषय की ओर झुके पड़ते हैं

उसमें अपना नाम अमर कर जाते हैं। इनके चञ्चल स्वभाव में चुलबुलाहट की मात्रा अधिक थी और इनके भावुक हृदय का झुकाव भी कविता की ओर था इसलिए ये इसी ओर झुक पड़े।

इंशा ने अपनी कविता किसी से संशोधित नहीं कराई पर कुछ दिनों तक आरम्भ में अपने पिता को दिखा लिया करते थे। विद्या के सभी मार्ग ऐसे हैं कि उनमें 'मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं बिरञ्चि सम।' परन्तु इन सब में कविता का मार्ग निराला है जहाँ गुरु और शिष्य दोनों ही प्रतिभाशाली होने चाहिए और तभी दोनों के परिश्रम सार्थक हो सकते हैं। जिस प्रकार अच्छे गुरु का मन्द बुद्धि वाले शिष्य पर परिश्रम करना व्यर्थ जाता है उसी प्रकार मेधावी शिष्य कुकवि गुरु के फेर में पड़कर बेढंगा रास्ता पकड़ कर अपना श्रम निष्फल करता है। इसलिए यदि प्रतिभा-शाली शिष्य अपने पुरुषार्थ के सहारे कोई नया मार्ग निकाल लेता है तो वह कम से कम बुरे मार्ग से अच्छा ही रहता है। अस्तु, जब बङ्गाल के नवाब सिराजुद्दौला मारे गए और वहाँ गड़बड़ मचा तब सैयद इंशा मुर्शिदाबाद से दिल्ली चले आए। उस समय दिल्ली के केवल नाम मात्र के सम्राट् शाहे-आलम द्वितीय स्वयं कवि थे। बादशाह ने सैयद इंशा को बड़ी प्रतिष्ठा के साथ अपने दरबार में रख लिया और ये भी

किस्से कहानी के साथ कविताएँ सुनाकर बादशाह के कृपा पात्र बन गए।

[शाहेआलम के दरबार में]

दिल्ली के प्रसिद्ध कवि मीर तक़ी 'मीर' और मिर्ज़ा रफ़ीअ 'सौदा' का समय बीत चुका था परन्तु तब भी अनेक वृद्ध कवि वहाँ थे जिनमें मीर दर्द के शिष्य हकीम सनाउल्ला 'फ़िराक़', हकीम कुदरतुल्ला खाँ 'क़ासिम', मीर के शिष्य मियाँ शकेबा, शाह हिदायत, सौदा के शिष्य मिर्ज़ा अज़ीम बेग 'अज़ीम', मीर क़मरुद्दीन 'मिन्नत', शेख़ वलीउल्ला 'मुहिब' आदि मुख्य थे। ये इस नए आगन्तुक को बादशाह का कृपापात्र होते देखकर उससे द्वेष करने लगे और उसकी कविता पर प्रशंसा करना दूर रहा खोज खोज कर दोष निकालने लगे। वे वृद्ध पुराने लकीर के फकीर हो रहे थे और इधर इनकी उभड़ती जवानी कविता में नई काट छाँट तथा व्यङ्ग्य आदि का समावेश कर रही थी। उन लोगों को यह नहीं भाया और वे द्वेष रूपी चश्मे लगा कर कठोर आलोचना करने में लग गए।

इनमें मिर्ज़ा अज़ीम बेग मिर्ज़ा सौदा के शिष्य और वृद्ध कवि होने के कारण अपने को बहुत बड़ा कवि समझते थे और इंशा के प्रति द्वेष रखने में सब से बढ़कर थे। एक दिन वह मीर माशाअल्लाह खाँ के पास गए और एक ग़ज़ल उन्हें

सुनाई। सैयद इंशा भी वहीं थे और उन्हों ने भी उसे सुना। यद्यपि वह ग़ज़ल बहरे रजज़ में कही गई थी पर उसके कुछ शैर बहरे रमल में जा पड़े थे। सैयद इंशा इसे ताड़ गए और उसकी बहुत प्रशंसा करके कहा कि आप इसे अवश्य मुशायरः अर्थात् कविसभा में पढ़िए। मिर्ज़ा साहब भी बहुत प्रसन्न हुए और दूसरी कविसभा में उन्होंने उस ग़ज़ल को पढ़ ही डाला। यह कविसभा अवध के नवाब शुजाउद्दौला के पुत्र नवाब अमीनुद्दौला मुईनुल्मुल्क नासिरजङ्ग के यहाँ हुई थी जो कविता में अपना उपनाम अमीर रखते थे और मिर्ज़ा मेढ़ू के नाम से प्रसिद्ध थे। यह कुछ दिनों के लिए दिल्ली में आकर ठहरे हुए थे और बहुधा इनके यहाँ इस प्रकार का जमघटा रहता था क्योंकि यह कवियों और रईसों की बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। सैयद इंशा वहां मौजूद ही थे, उन्होंने ग़ज़ल सुनतेही तक़तीअ करने के लिए कहा तब मिर्ज़ा अज़ीम को अपनी भूल ज्ञात हुई और वह उस भरी सभा में कैसे लज्जित हुए होंगे और उन पर क्या बीती होगी यह वेही जानते होंगे। परंतु इंशा ने इस विषय को लेकर उन सब कवियों पर एक साथ ही हाथ फेर दिया और एक मुख़म्मस भी पढ़ा जिसका मतलअ यह था—

गर तू मुशायरः में सबा आजकल चले।
कहियो अज़ीम से कि ज़रा वह सँभल चले॥

इतना भी हद से अपने न बाहर निकल चले ।
पढ़ने को शब जो यार ग़ज़ल दर ग़ज़ल चले ॥
बहरे रजज़ में डाल के बहरे रमल चले ॥

मिर्ज़ा अज़ीम बेग ने यद्यपि घर पर जाकर इसी मुख़म्मस की तरह में एक लम्बा मुख़म्मस बनाकर अपना क्रोध शान्त किया परन्तु वह 'युद्धान्तेरेण मुष्टिकाघातः' के समान था । उदाहरण के लिए दो चार बंद सुनिए—

वह फ़ाज़िले-ज़मानः हो तुम जामए-उलूप ।
तहसीले-सर्फ़ो-नह्वो से जिनकी मची है धूम ॥
रमलो रियाज़ी हिकमतो हैयत जफ़र नजूम ।
मन्तिक़ बयान मानी कहें सब ज़मीं को चूम ॥
तेरी जबाँ के आगे न देहकाँ का हल चले ॥

एक दो ग़जल के कहने से बन बैठे ऐसे ताक़ ।
दीवान शायरों के नजर से रहे ब ताक़ ॥
नासिर अली नजीरी की ताक़त हुई है ताक़ ।
हरचन्द अभी न आई है फ़हमीदो जुल्फ़ो ताक़ ॥
टँगड़ी तले से उर्फ़िओ क़ुदसी निकल चले ॥

था रोज फ़िक्र में कि कहूँ मानिओ मिसाल ।
तजनीसो हम रिआयते लफ़्ज़ीओ हम खियाल ॥

फ़र्क़े रजज़ रमल न लिया मैंने गो सँभाल ।
नादानी का मेरे न हो दाना को एहतमाल ॥
गो तुम बक़द्रे फ़िक्र यही कर हमल चले ॥

मौज़ूनिओ मआनी में पाया न तुमने फ़र्क़ ॥
तबदीले बहर से हुए बहरे खुशी में ग़र्क़ ।
रौशन है मिसले मेह्र यह अज ग़र्ब ता बशर्क़ ॥
शहजोर अपने जोर में गिरता है मिसले बर्क़ ।
वह तिफ्ल क्या गिरेगा जो घुटनों के बल चले ॥

शाहेआलम बादशाह भी कवि थे और वे अपनी कविता बहुधा कविसभाओं में पढ़े जाने के लिए भेजते थे। बादशाह की कविता भी बादशाही होती थी जिसकी कुछ शाअर हँसी उड़ाते थे। सैयद इंशा ने यह बात बादशाह के कान तक पहुँचा दी कि अमुक अमुक मनुष्य आपकी कविता की हँसी लेते हैं। बादशाह का यद्यपि उस समय तक भी दिल्ली में बहुत कुछ दबदबा और प्रभाव था परन्तु उन्होंने किसी को कुछ न कहकर केवल अपनी ग़ज़ल भेजना बन्द कर दिया। इस बात का भी पता सबको मिलगया और सब दूसरे कविसभा में कमरें कसकर पहुँचे। इनके प्रतिद्वंद्वियों ने अपने सशस्त्र साथवालों को घात में लगा रखा था और मित्रों तथा भाई बन्दों को कविसभा में साथ लेगए थे। वलीउल्ला 'मुहिब'

ने यह क़ितअ:पढा—

मजलिस में चुके चाहिए झगड़ा शुअरा का।
ऐसे ही किसी साहबे तौक़ीर के आगे॥
यह भी कोई दानिश है कि पहुँचे य कुजाया।
अकबर तईं या शाहे जहाँगीर के आगे॥

मिर्ज़ा अज़ीमबेग ने कहा कि मैंने अपने लिए केवल अपने गुरु के एक शैर पर सन्तोष किया है जिसपर यह बन्द अभी तैयार होगया है—

'अज़ीम' अब गो हमेशः से है यह शैर कहना शेआर अपना।
तरफ़ हर एक से हो बहस करना नहीं है कुछ इफ़तख़ार अपना॥
कई सखुनबाज़ खण्डगोयों में हो न हो एतबार अपना।
जिन्हों के नज़रों में हम सुबुक हैं दिया उन्हीं को वक़ार अपना॥
अजब तरह की हुई फ़राग़त गधों पै डाला जो बार अपना॥

सैयद इंशा ने इन सब कटाक्षों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और अपनी ग़ज़ल जो लाए थे पढ़कर सुनाई। यह ग़ज़ल फ़ख़ियः थी अर्थात स्वप्रशंसा में लिखी गई थी जिसका एक एक शैर सुनने वालों के हृदय पर चोट करता था।

एक तिफ़्ले दबिस्ताँ है फ़लातूँ (१)मेरे आगे।

---

(१) फ़लातूँ—इसका जन्म सं० ३७० वि० पू० में हुआ था और ये एथेन्स नगर के रहने वाले थे। यह सुकरात के शिष्य

क्या मुहँ है अरस्तू (१)जो करे चूँ मेरे आगे ॥
क्या माल भला कस्रफ़रेदूँ मेरे आगे ।
काँपे है पड़ा गुम्बदे गर्दूं मेरे आगे ॥
मुर्ग़ाने उला अजनए मानिंद कबूतर ।
करते हैं सदा इजज़ से गूँ गूँ मेरे आगे ॥
मुँह देखो तो नक्क़ारचिए पीले फ़लक भी ।
नक्क़ार बजाकर कहे दूँ दूँ मेरे आगे ॥
हूँ वह जबरूत कि गरोहे हुकमा सब ।
चिड़ियों की तरह करते हैं चूँ चूँ मेरे आगे ॥
बोले है यही ख़ामः कि किस किस को मैं बाँधू ।
बादल से चले आते हैं मज़मूँ मेरे आगे ॥

थे और जब वे सं० ३४२ वि० पू० में मारे गए तब ये भी देश छोड़ कर भागे। दस बारह वर्ष तक मिश्र, इटली आदि स्थानों में भ्रमण करने के अनंतर ये लौटे और सं० ३३१ वि० पू० में एथेंस में स्कूल स्थापित किया। ये प्राचीन ग्रीस के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान थे। इनकी मृत्यु सं २९० वि० पू० में हुई।

(१) अरस्तू—इनका जन्म सं० ३२७ वि० पू० चालसिडाइस के स्टागीरा ग्राम में हुआ था। सत्तरह वर्ष की अवस्था में एथेंस आए और फलातूँ के शिष्य हुए जिसकी मृत्यु पर अटार्न्यूस चले गए। वहाँ से बुलाकर फ़िलिप ने सिकंदर का शिक्षक नियुक्त किया जिसकी सं० २७८ वि० पू० में राजगद्दी होने पर यह एथेंस लौट आए और अपना स्कूल स्थापित किया। इसकी मृत्यु सं० २६५ वि० पू० में हुई।

मुजरे को मेरे खुसरवो पर्वेज़ हों हाज़िर।
शीरीं भी कहे आके बला लूँ मेरे आगे॥
क्या आके डरावे मुझे ज़ुल्फ़े शबे यलदा।
है देव सुफ़ेदे सहरी जूँ मेरे आगे॥
वह मारे फ़लक काहेकशाँ नाम है जिसका।
क्या दख़्ल जो बल खाके करे फूँ मेरे आगे॥

इनके अन्तर जब हकीम मीर कुदरतुल्ला ख़ां क़ासिम की पारी आई तब उन्होंने कहा कि सैयद साहब (इंशाअल्लाह ख़ाँ) ज़रा अलफ़ील मालफ़ल को भी मुलाहज़ा फर्माइए। नवाब साहब ने जिनके यहाँ यह कविसभा हुई थी, यह समझकर कि कहीं इंशा की हजो न कही हो और उसके पढ़ने से आपस में विरोध अधिक हो जाय इसलिए दोनों से मेल कराने के लिए खड़े हुए। इंशा भी उदारता से उठकर हकीम साहब से मिले और इस प्रकार सब में सन्धि होगई।

[लखनऊ को प्रस्थान]

यद्यपि यह दिल्ली के बादशाह शाहेआलम के दरबार में बड़ी प्रतिष्ठा के साथ रहते थे पर शाहेआलम शतरञ्ज के बादशाह के समान होरहे थे और दूसरों के हाथों के कठपुतली थे। सं० १८४५ वि० में गुलाम क़ादिर ने, जो जाबिताख़ाँ रुहेला का पुत्र था, दिल्ली पर अधिकार

करके शाहेआलम को गुप्त कोष बतलाने के लिए अन्धा कर डाला। इंशा का ऐसे बादशाह से धन की आशा करना व्यर्थ था। यद्यपि इन्होंने कुछ दिनों तक बादशाह से माँग कर काम चलाया पर इस प्रकार कितने दिन चल सकता था। इधर लखनऊ के नवाब आसफ़ुद्दौला के दान की धूम चारों ओर मची हुई थी। यह मसल मशहूर होगई थी कि 'जिसे न दे मौला, उसे दे आसफ़ुद्दौला'। वहाँ की प्रजा भी गुणग्राहक थी, इसलिए जो गुणी उधर गए वे फिर नहीं लौटे।

अन्त में सैयद इंशा को भी लखनऊ जाना पड़ा। वहाँ पहुँचते ही कविसभाओं में इनका ग़ज़ल सुनकर लोग फड़क उठे और बहुत जल्द यह मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह के दरबार में पहुँच गए। यह शाहेआलम के पुत्र थे और स्वयं कवि थे। इनके यहाँ कवियों का सर्वदा जमाव रहता था जिनमें मुसहिफी, जुरअत, मिर्ज़ा कतील आदि मुख्य थे। सैयद इंशा चगत्ताई वंश के पुराने सेवक थे जिस नाते और अपने गुणों से झट मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह के कृपापात्र बनगए। मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह पहले मुसाहिफी से अपनी कविता का संशोधन कराते थे परन्तु इनके पहुँचने पर इनकी कविता की शैली आदि ऐसी रुची कि इन्हीं से संशोधन कराने लगे।

जब शाहजादा ने मुसहिफी का वेतन भी कुछ कम कर

दिया तब उन्होंने ये शैर कहे—

चालीस बरस का है चालीस के लायक़ ।
था मर्द मुअम्मर कहीं दस बीस के लायक़ ॥
ए वाए कि पच्चीस से अब पाँच हैं अपने ।
हम भी थे किन्हीं रोजों में पच्चीस के लायक़ ॥
उस्ताद का करते हैं अमीर अब कि मुक़र्रर ।
होता है जो दरमाहः कि साईस के लायक़ ॥
चारः के लगाने से हुआ दो का इज़ाफ़ः ।
फिर वह न जले जी में कि हो तीस के लायक़ ॥

इसके अनन्तर भी जाना आना बना हुआ था पर एक दिन शेख साहब ने मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह के जलसे में यह ग़ज़ल पढ़ी जिसके कुछ शैर ये हैं—

जोहरः की जो आई कफ़े हारूत में उँगली ।
की रश्क ने जा दीदए मारूत में उँगली ॥
बिन दूध अँगूठ का तरह चूसे है कोदक ।
रखती है तसर्रुफ अजब एक कूत में उँगली ॥
ग़र्क़ः के तेरे हाल पै अज बहरे तअस्सुफ ।
हर मौज से थी कल दहनें हूत में उँगली ॥
मेहदी के यह छल्ले नहीं पूरों प बनाए ।
है उसकी हर एक हलक़ए याक़ूत में उँगली ॥

शहतूत है या सानेअ आलम ने लगादी ।
शीरीं के यह शाखे शजरे तूत में उँगली ।।
था मुसहिफी यह मायले गिरियः के पस अर्ज मर्ग ।
थी उसकी धरी चश्म पै ताबूत में उँगली ।।

इसी तरह में सैयद इंशा ने भी गजल कहा जिसका प्रथम शैर यों है:—

देख उसकी पड़ी खातिमे याकूत में उँगली ।
हारूत ने की दीदए मारूत में उँगली ।।

मुसहिफी के जाने पर लोगों ने उसके ग़जल को खूब बिगाड़ा, जिसके उदाहरण के लिए यह शैर पढ़िए—

था मुसहिफी काना जो छिपाने को पस अज मर्ग ।
रखे हुए था आँख पै ताबूत में उँगली ।।

जब शेख मुसहिफी को इसका पता लगा तब वृद्ध होने पर भी आप बिगड़ गए और एक गजल स्वाभिमान से भरी हुई एक जलसे में पढ़ी जिसके कुछ शैर दिए जाते हैं—

मुद्दत से हूँ मैं सरखुशे सहबाए शाएरी ।
नादाँ है जिसको मुझसे है दावाए शाएरी ।।
मैं लखनऊ में जमजमः संजाने शैर को ।
बरसों दिखा चुका हूँ तमाशाए शाएरी ।।

फबता नहीं है बज्मे अमीराने-दह में ।
शायर को मेरे सामने गौगाए-शाएरी ॥
एक तुर्फः खर से काम पड़ा है मुझे कि हाय ।
समझे है आपको वह मसीहाए शाएरी ॥

इस प्रकार के और भी गजल कहे जिस पर सैयद इंशा को यह ध्यान में आया कि मैं भी शाहजादे के हर जलसे में रहता हूँ और मुसहिफी से मित्रता भी है। कहीं वह कुछ और न समझें, इस विचार से पालकी पर सवार हो उसके घर पर गए और कहा कि भई, जलसे में इस प्रकार बातचीत हुई थी, तुम्हें मेरी ओर से कुछ मलाल न होना चाहिए। शेख मुसहिफी ने बेपरवाही से कहा कि मुझे ऐसी बातों का ख्याल भी नहीं और अगर तुम कहते ही तो क्या था। सैयद इंशा को यह अन्तिम वाक्य खटका और घर आते ही उन्हों ने बहरे तवील में इनकी हजो कही।

[इंशा और मुसहिफी की दो दो चोटें]

इन्हीं दिनों एक कविसभा में एक तरह की गजलें पढ़ी गईं जिनमें मुसहिफी ने आठ शैरों की एक गजल कही:—

सर मुश्क का है तेरा तो काफूर की गर्दन ।
नै मूए परी ऐसी न यह हूर की गर्दन ॥
मछली नहीं साअद में तेरे बलकि निहाँ है ।
वह हाथ में माहीए सकनकूर की गर्दन ॥

यों मुर्गे दिल जुल्फ के फंदे में फँसा है ।
जों रिश्तए सैयाद में असफूर की गर्दन ॥
दिल क्यों कि परी हूर की फिर उसपै न फिसले ।
सानेअ ने बनाई तेरी बिल्लूर की गर्दन ॥
इक हाथ में गर्दन हो सुराही का मजा है ।
और दूसरे में साक़िए मख़मूर की गर्दन ॥
हर चन्द मैं झुक झुक के किए सैकड़ों मुजरे ।
पर ख़म न हुई उस बुते मग़रूर की गर्दन ॥
क्या जानिए क्या हाल हुआ सुबह को उसका ।
ढलकी हुई थी शब तेरे रंजूर की गर्दन ॥
यों जुल्फ़ के हल्क़ः में फँसा मुसहिफी ए वाए ।
जों तौक़ में होवे किसी मजबूर की गर्दन ॥

इंशा ने इस ग़जल में अशुद्धियाँ निकालकर उस पर एक क़ितः लिख डाला । उनकी गजल के कुछ शेर उदाहरण के लिए दर्ज किए जाते हैं जिसे उन्हों ने वहीं इसी तरह में पढ़ा था और उसमें सोलह शेर थेः——

तोड़ूँगा खमे बादए अंगूर की गर्दन ।
रख दूँगा वहीं काट के एक हूर की गर्दन ॥
क्यों साक़िए खुर्शेद जबीं क्याही नशे हों ।
सब योंहीं चढ़ा जाँउ मए नूर की गर्दन ॥

आईनः का गर सैर करे शेख तो देखे।
सर खि़र्स का मुँह खूक का लंगूर की गर्दन ॥
तब आलमे मस्ती का मजा है कि पड़ी हो।
गर्दन पै मेरे उस बुते मख़मूर की गर्दन ॥
हासिद तो है क्या चीज करे क़स्द जो 'इंशा'।
तो तोड़ दे झट बलअमे बाऊर की गर्दन ॥

सैयद ने जब यह गजल पढ़ी, जिसके अन्तिम शैर के "बलअमे बाऊर' से शेख के बुढ़ापे पर भी चोट किया था, तब उनके एक शिष्य 'मुन्तज़िर' ने अपनी गजल में इंशा पर चोट की। उसका एक मिसरा है--

बाँधी दुमे लंगूर में लंगूर की गर्दन।

इंशा के गले में दुपट्टा रहता था, जिसका एक सिरा आगे और एक पीछे रहता था। सैयद ने उसी समय एक शैर और पढ़ा—

सफ़रः पै जराफ़त के जरा शेख को देखो।
सर लोन का मुँह प्याज का अमचूर की गर्दन ॥

शेख़ के बाल पक कर सफ़ेद हो गए थे और मुँह रक्त के जमने से प्याज़ी रंग का हो गया था। मुसहिफ़ी के शिष्यों में 'मुन्तज़िर' और 'गर्म' दो बहुत तेज़ थे और उन्हों ने गुरु का हर तरह साथ दिया। ये दोनों नवाब के तोपख़ाने

में नौकर थे और एक मसनवी लिखकर उसका 'गर्म तमाँचः' नाम रखा था। सैयद इंशा ने शेख़ के ग़ज़ल पर जो क़िता लिखा था और उसका जो जवाब मुसहिफ़ी ने दिया था उसके कुछ अंश उद्धृत किए जाते हैं। दोनों अशों के पढ़ने से दोनों के कटाक्षपूर्ण लेखन शैली की विभिन्नता साफ ज्ञात होगी। सैयद दूसरों के बनाने में एकही थे यद्यपि शेख़ ने भी अपने विचार अच्छी प्रकार प्रकट कर लिए हैं।

क़ितः हजो

सुन लीजे गोशे दिल से मेरे मुशफिक़ा यह अर्ज़।
मानिन्द बेद गुस्सः से मत थरथराइए॥
बिरल्लूर गो दुरुस्त हो लेकिन ज़रूर क्या।
ख़्वाही न ख़्वाही उसको ग़ज़ल में खपाइए॥
यह तो ग़ज़ब है कहिए ग़ज़ल आठ बैत की।
और उसमें रूप ऐसे अनोखे दिखाइए॥
यों ख़ातिरे शरीफ़ में गुज़रा कि बज़्म में।
कुचला हुआ शरीफ़ः ग़ज़ल को बनाइए॥
गर्दन का दख़्ल क्या है सक़नक़ूर में भला।
साँडे की तरह आप न गर्दन हिलाइए॥
उर्दू की बोली है यह भला खाइए क़सम।
इस बात पर अब आपही मुसहिफ़ उठाइए॥

इस रमज़ का यहाँ शुनवा कौन है भला।
अब भैरवी का टप्पा कोई आप गाइए॥

शेख़ का जवाब

मैं लफ़्ज सक़नकूर मुजर्रद नहीं देखा।
ईजाद है तेरा यह सक़नकूर की गर्दन॥
यह लफ्ज मुशद्दद भी दुरुस्त आया है तुझसे।
ख़म होती है कोई मेरे बिल्लूर की गर्दन॥
यों सैकड़ों गर्दन तु गया बाँध तो क्या है।
सूझी न तुझे हैफ़ कि मज़दूर की गर्दन॥
खटराग यह गाया प तेरे हाथ न आई।
अफसोस कि इस तान पै तंबूर की गर्दन॥
वह शाह सुलेमाँ कि अगर तेग़े अदालत।
टुक खींचे तो दो हो वहीं फ़ग़फ़ूर की गर्दन॥
'ए मुसहिफ़ी' ख़ामुश बसखुन तूल न खिंच जाय।
याँ कोतः ही बेहतर सरे पुरशोर की गर्दन॥

शेख ने पहले सक़नकूर शब्द पर जो आलोचना की है, वह अशुद्ध है। यह यूनानी शब्द है, जो किसी जानवर का नाम है। इससे और मछली से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब कोई कविता से दिल का गुबार नहीं निकाल सका और इसमें इंशा की जीत रही तब शेख़ साहब के असंख्य शिष्यों ने

एक दिन इकट्ठे होकर स्वाँगें बनाईं और हजो बनाकर पढ़ते हुए इंशा के गृह की ओर चले। ये मार पीट करने को भी तैयार थे। सैयद साहब को जब इसका पता लगा तब उन्हों ने झट फ़र्श बिछवाई, पान, इलायची आदि स्वागत का प्रबंध किया और जलपान की भी तैयारी की। जब प्रति-द्वन्द्वीगण पास आए तब साथ वालों सहित आगे बढ़कर स्वागत किया और प्रशंसा करते हुए साथ गृह पर लिवा लाए। सबको बिठाकर अपनी हजो पढ़वा कर सुनी, प्रसन्नता दिखलाई और खातिरदारी कर बिदा किया।

इसके प्रत्युत्तर में सैयद इंशा ने जो बारात निकाली थी वह भी बड़े मार्के की थी। बहुत सी हजोएँ तैयार कीं और लोगों को देकर हाथी, घोड़ों और तख्तों पर सवार कराया। एक भारी हाथी पर कुछ लोग हाथ में एक बड़ा गुड्डा और गुड़िया लिए दोनों को लड़ाते थे और हजो गाते थे, जिसका एक शेर यों है—

स्वाँग नया लाया है देखना, ए चर्ख़े कुहन।
लड़ते हुए आए हैं मुसाहिफ़ी मुसहफ़न॥

इन सब कार्रवाइयों में मिर्जा सुलेमान शिकोह और दूसरे रईस इंशा का साथ लेते थे जिससे मुसाहिफ़ी को दुःख होता था। अस्तु।

यद्यपि सैयद इंशा शाहजादा सुलेमान शिकोह और दूसरे रईसों के दरबार में सन्मान के साथ आते जाते थे पर सर्वदा अपनी उन्नति मार्ग की खोज में भी रहते थे। तफ़ज़्ज़ुल हुसेन ख़ाँ अल्लामः नवाब सआदतअली ख़ाँ के वज़ीर थे। इन्हें नवाब आसफ़ुद्दौला कलकत्ते से लिवा लाए थे, जहाँ वे अँग्रेज़ों के यहाँ मुन्शी थे। यह अच्छे विद्वान थे और अंग्रेज़ी तथा लैटिन भी जानते थे। आसफ़ुद्दौला ही ने इन्हें मन्त्री बनाया था और सं० १८५४ में उनकी मृत्यु पर जब वज़ीर अली नवाब हुआ तब सं० १८५५ में उसको गद्दी से उतारने और सआदत अली ख़ाँ को उस पर बिठाने में इन्हों ने भी प्रयत्न किया था। सैयद इंशा इनके यहाँ बहुधा जाया करते थे और वह भी इनकी योग्यता और अच्छे वंश के कारण प्रतिष्ठा करते थे। किसी दिन अल्लामः ने सआदत अली ख़ाँ से इंशा की बहुत प्रशंसा की जिस पर नवाब ने इन्हें लाने की आज्ञा दी। दूसरे ही दिन वह इंशा को साथ लिवा गए और उसी दिन बात चीत से नवाब को ऐसा प्रसन्न किया कि उन्हें इन्हीं की बात में मज़ा मिलने लगा। यह नवाब सआदत अली ख़ाँ के राजत्व के प्रथम वर्ष ही में दरबार पहुँचे होंगे क्योंकि उसी वर्ष ख़ाँ साहब की कलकत्ते से लौटने पर मृत्यु होगई थी।

[आशु कविता तथा विनोद के उदाहरण]

नवाब सआदत अली ख़ाँ कुछ रूखे स्वभाव के मनुष्य थे और प्रबंधों के मारे इन्हें साहित्य आदि कुरुचिकर भी मालूम होते थे, परन्तु प्रत्येक जीवित मनुष्य के लिए दिल बहलाने का एक न एक रास्ता रहता है और उसके लिए वह समय निकालने के लिए बाधित होता है। रईसों में हँसी मसख़रे पन की बातें या वैसीही कविता अधिक रुचिकर समझी जाती है और सैयद इंशा भी नई रङ्गीन कविताएँ करने और चोज़ की बात निकालने में एकही थे। यद्यपि इन्हें कोई पद नहीं प्राप्त हुआ पर वह हर समय के साथ के कारण मुँह लगे दरबारी होगए थे। इस समय में इन्होंने सैकड़ों आदमी के काम निकाल दिए और इसके लिए वह अनेकों के धन्यवाद के पात्र हुए थे।

सआदत अली खाँ इन्हें कभी कभी विचित्र समस्याएँ पूर्ति करने के लिए देते थे। एक बार दरबार में कोई मनुष्य बेढङ्गी चाल से पगड़ी बाँधे हुए सामने आया कि तुरन्त नवाब साहब ने एक मिसरा दुरुस्त कर इन्हें ग़ज़ल तैयार करने की आज्ञा दी। वह मिसरा यों था—

पगड़ी तो नहीं है यह फ़रासीस की टोपी।

इस पर इन्हों ने तुरन्त ग्यारह शैरों की एक ग़ज़ल कह

डाली, जिसके दो चार शैर उद्धृत कर दिए जाते हैं:—

पगड़ी तो नहीं है यह फ़रासीस की टोपी।
याँ वक्ते सलाम उतरे है इबलीस की टोपी॥
हुदहुद को खुशी तब हुई जिस दम नजर आई।
हाथों में सुलेमान के बिलक़ीस की टोपी॥

मुमकिन हो तो धर दीजे बनाकर तेरे सिर पर।
ज़रबफ्ते महो ज़ुहरओ बिरजीस की टोपी॥
'इंशा' मेरे आग़ा की सलामी को झुके है।
सुक्काने सरापरदए तक़दीस की टोपी॥

एक दिन नवाब सआदत अली खाँ बजड़े पर सवार होकर सैर करने निकले और बजड़ा बहता बहता अली नक़ी बहादुर की हवेली के सामने पहुँचा, जो नदी के तट पर बनी हुई थी। उस पर ये शब्द लिखे थे—हवेली अली नक़ी बहादुर की। नवाब साहब ने देखते ही कहा कि देखो इंशा, किसी ने एक चरण कहा है पर पूरा नहीं कर सका है, तुम्हीं इसे पूरा करदो। इंशा ने उसी समय यह रुबाई बनाकर कह डाली:—

न अरबी न फारसी न तुर्की।
न सुम की न ताल की न सुर की॥
यह तारीख़ कही है किसी लुर की।
हवेली अली नक़ी बहादुर की॥

किसी दिन सैयद इंशा नवाब साहब के साथ बैठकर भोजन कर रहे थे। कुछ गर्मी मालूम हुई इसलिए पगड़ी उतार दी। इनका सिर मुड़ा हुआ सफ़ाचट देखकर नवाब साहब के मनमें कुछ चुहल समाई तो उन्होंने झट एक चपत जमा दी। इन्हों ने तुरंत यह कहते हुए पगड़ी सिर पर रखली कि सुभानअल्लाह! बचपन में बड़े लोग समझाया करते थे कि नङ्गे सिर खाना खाते समय शैतान धौल मारता है, वह बहुत ठीक है।

नवाब सआदत अली खाँ की आज्ञा थी कि दफ्तर के लेखक गण अक्षर बनाकर लिखा करें और मात्रा की अशुद्धि होने पर भी प्रति अशुद्धि एक रुपया दण्ड लगे। दैवात् एक विद्वान मौलवी साहब ने भूल से अजनास के बदले अजना लिख दिया जिसपर नवाब साहब की नज़र पड़ गई। मौलवी साहब वैयाकरणी थे, उन्होंने सूत्रों की मार से उसे शुद्ध करना चाहा, जिस पर नवाब साहब ने सैयद इंशा को इशारा किया जो वहाँ हाजिर थे। इन्होंने रुबाई आदि बनाकर मौलवी साहब को बनाडाला, जिनका नाम मौलवी सजन था:—

अजनास की फ़रद पर यह अजना कैसा?
याँ अब्र लुग़ात का गरजना कैसा?
गोहूँ अजना के मआनी जो चीज़ उगे।
लेकिन यह नई उपज उपजना कैसा?

तरख़ीम के क़ायदे से सजना लिखिए।
और लफ़्ज़ ख़रोजना को ख़जना लिखिए॥
गर हमको अजी न लिखिए हो लिखना।
तो करके मरखूम उसको अजना लिखिए॥
अजनास के बदले लिखिए अजना क्या खूब।
क़ामूस की राद का गरजना क्या खूब॥

अज़ रूए लुग़त नई उपज की ली है।
इस तान के बीज का उपजना क्या खूब॥
अजनास के मौक़न में अजना आया।
सुलमाए उलूम का यह सजना आया॥
अजना चीज़ेस्त काँ बेरवेद ज़े ज़मीं।
यह तुख़्मे लुग़त का लो उपजना आया॥

रात्रि अधिक व्यतीत हो गई थी और इंशा के क़िस्से कहानी के फ़ुहारे छूट ही रहे थे। बाहर के रहने वाले एक दूसरे मुसाहिब थे, जो बहुधा अन्य मुसाहिबों की हँसी लिया करते थे और उन्होंने नवाब साहब से कहा भी था कि आप सैयद इंशा को बहुत बढ़ाते हैं, वस्तुतः वह इतने योग्य नहीं हैं। उस समय उन्होंने बक़ा का एक शेर पढ़ाः—

देख आईनः जो कहता है कि अल्लाह रे मैं।
उसका मैं देखने वाला हूँ बक़ा वाह रे मैं॥

इसको सुनकर सभीने प्रशंसा की और नवाब साहब को भी यह पसन्द आया। तब उन्होंने कहा कि हुजूर, सैयद इंशा से भी इस मतलअ को कहलाया जाय। नवाब ने इनकी ओर देखा। इन्होंने बुद्धि लड़ाई परन्तु वह बेजोड़ मतलअ था तब अन्त में शैर तैयार करके कहा कि मतलअ तो नहीं बन सका परन्तु शैर यों है:—

एक मिल्की खड़ा दरवाजः पै कहता था रात।
आप तो भीतरे जा पाड़ः रहे बाहरे मैं॥

इस शैर में 'बाहरे' शब्द द्व्यर्थक है और बाहरे वाले मुसाहिब पर चोट की गई है। पूर्वोक्त घटनाओं से ज्ञात हो जाता है कि सैयद इंशा नवाब सआदत अली खाँ के दरबार में किस प्रकार जीवन व्यतीत कर रहे थे। इसके समर्थन में यह लिखा जाता है कि जब शाह नसीर दिल्ली से लखनऊ आए, तब वह सैयद इंशा से भी मिलने गए और उनसे कहा कि भई, मैं केवल तुम्हारे विचार से लखनऊ आया हूँ, नहीं तो मेरा यहाँ कौन बैठा है। उस समय रात्रि अधिक जा चुकी थी। मीर इंशाअल्लाह ख़ाँ ने कहा कि शाह साहब, यहाँ का दरबार विचित्र है, क्या कहें? जनता समझती है कि मैं कविता करके सेवा बजाता हूँ, पर मैं स्वयं नही जानता कि मैं क्या कर रहा हूँ? सुबह का गया गया सन्ध्या को घर आया था कि चोबदार ने आकर कहा कि आपको जनाबे-

आली फिर याद करते हैं । जाकर देखता हूँ तो कोठे पर पहिएदार छपरखट पर आप बैठे हैं, बिछौना बिछा हुआ है, फूल रखे हुए हैं और आप गजरे को उछालते और रोकते हैं। पाँव के इशारे से छपरखट आगे बढ़ रहा था। देखते ही कहा कि कोई शैर पढ़ो। अब कहिए, जब आपही क़ाफ़ियातङ्ग होरहा था तब ऐसे समय क्या शैर कहा जाए, पर उस समय यही समझ में आगया, कह दिया और वह खुश भी हो गए।

लगा छपरखट में चार पाहिए उछाला तूने जो लेके गजरा।
तो मौज दरियाए चाँदनी में वह ऐसा चलता था जैसे बजरा॥

एक दिन सैयद इंशा प्रसिद्ध कवि जुरअत के गृह पर गए तो देखा कि वह सर झुकाए बैठे कुछ सोच रहे हैं। इन्होंने पूछा कि किस विचार में मग्न हैं? उत्तर दिया कि एक मिसरा ध्यान में आ गया है और मैं चाहता हूँ कि पूरा मतलब हो जाय। इन्होंने पूछा कि वह कैसे है। जुरअत ने कहा कि नहीं, जब तक दूसरा मिसरा न लग जाएगा, नहीं सुनाऊँगा। इनके हठ करने पर जुरअत ने पढ़ दिया। मिसरा—

उस ज़ुल्फ़ पै फबती शबे दैजूर की सूझी।

सैयद इंशा ने झट दूसरा मिसरा कहा कि—

अंधे को अँधेरे में बहुत दूर की सूझी॥

जुरअत वृद्धावस्था के कारण अन्धे हो गए थे, इस पूर्ति को सुनकर हँस पड़े और अपनी लकड़ी उठाकर मारने दौड़े। सैयद साहब भागते फिरे और यह पीछे टटोलते रहे। इससे यह भी प्रकट होता है कि इंशा कैसे हँसोड़ थे और वह समय भी कुछ ऐसाही था कि सभी विनोदप्रिय होते थे।

सं० १८६४ में कर्नल जौन बेली अवध के रेजिडेन्ट नियुक्त हुए और इस पद पर वे सं० १८७२ तक रहे। इन्हीं के नाम से एक फाटक बेली गारद आज तक कहलाता है। यद्यपि इन्होंने सैयद इंशा का नाम और उनकी प्रसिद्धि सुनी थी पर कभी देखा नहीं था। एक दिन सैयद इंशा नवाब की हाजिरी में थे कि बेली साहिब के आने का समाचार मिला। नवाब ने कहा कि आज तुम्हें साहब से परिचित कराएँगे। जब साहब आए और नवाब तथा वह आमने सामने कुर्सियों पर बैठ गए तब इंशा नवाब के पीछे खड़े होकर रूमाल हिला रहे थे। बातें करते करते जब साहब ने इनकी ओर देखा तो इन्होंने मुँह बिचका दिया, जिससे उन्होंने आँखें नीची कर लीं। जब इस प्रकार दो तीन बार हो चुका तब साहब ने नवाब से पूछा कि यह मुसाहब आपकी सेवा में कब से आया है? नवाब ने कहा कि यही सैयद इंशा अल्लाह खाँ है, जिन्हें आपने आजही देखा है। यह ज्ञात होने पर बेली साहब बहुत हँसे और इनकी बात चीत से

ऐसे प्रसन्न हुए कि जब आते तब पहले इन्हीं को पूछते थे ।

रेज़िडेन्सी के मीर मुंशी अली नक़ी खाँ बहादुर भी साहब के साथ बहुधा आया करते थे, जिनसे और इंशा से दो एक चोट चल जाया करती थी । एक दिन बात चीत में मुन्शीजी के मुँह से निकल गया कि गुलिस्ताँ के हर एक शेर में भिन्न भिन्न रवायतें हैं इस लिए मिसरा—'शायद कि पलंग खुफ्तः बाशद' भी 'शायद कि पलंग खुफ़ियः बाशद' हो सकता है ।

नवाब ने इंशा की ओर देखा, जिस पर इन्होंने कहा कि 'मीर मुंशी ठीक कहते हैं, क्योंकि मैंने भी एक प्रति में इस प्रकार लिखा देखा है कि—

ता मर्द सखुन न गुफ़ियः बाशद ।
ऐबो हुनरश निहुफ़ियः बाशद ॥
दर बेशः गुमाँ मेबर के खालीस्त ।
शायद के पलंग खुफ़ियः बाशद ॥

वह प्रति बहुत शुद्ध थी और उसमें गुफ़ियः और निहुफ़ियः के कुछ अर्थ भी दिए थे जिसे मीर मुंशी साहब अवश्य जानते होंगे ।' वह बेचारे बड़े लज्जित हुए । जब वे जाने लगते तब सैयद बहुधा कहा करते थे कि 'मीर मुन्शी का अल्लाह बेली' । गुफ़ियः और निहुफ़ियः अशुद्ध है और इस लिए तुक मिलाने के लिए खुफ़ियः का प्रयोग नहीं किया जा सकता है, यही सैयद इंशा ने दिखलाया था ।

एक दिन नवाब साहब ने कहा कि हिज्र को हज्र भी कह सक्ते हैं। बेली साहब ने उत्तर दिया कि ऐसा मुहावरा नहीं है। तब नवाब ने कहा कि यदि कोष के अनुसार ठीक है, तो कोई हर्ज नहीं। इसी समय इंशा भी आपहुँचे, जिनसे बेली साहब ने पूछा कि हिज्र और हज्र में कौन ठीक है? इन्हें क्या मालूम कि क्या बात है, झट कह दिया कि हिज्र। पर नबाव साहब की तेवर ताड़कर बोले कि तभी जामी ने कहा है:--

शबे वस्ल अस्तो तै शुद नामए हज्र।
सलामो हीय हत्ते मतलउल् फ़ज्र॥

यह सुनकर नवाब साहब और अन्य दरबारी सभी प्रसन्न हो गए।

[इंशा के अन्तिम दिन]

सैयद इंशा का रंग गोरा और शरीर मोटा ताजा था। किसी पर्व के दिन यह काश्मीरी ब्राह्मण का स्वाँग बनाकर और छापे तिलक का सामान लेकर घाट पर जा डटे और उच्चस्वर से श्लोक आदि पढ़ने लगे। स्नान करनेवालों में स्त्री पुरुष बाल बच्चे सभी इनकी मुटाई और पढ़ाई पर रीझकर इन्हीं की ओर झुकते, यह छापा तिलक लगाते और मंत्र पढ़ पढ़ दक्षिणा, अन्न आदि वसूल करते। वहाँ के सभी घाटियों में

से इन्हीं के आगे अधिक अन्न आदि का ढेर लगा हुआ था। इससे यह भी मालूम होता है कि ये पक्के धूर्त थे।

यह सब बातें थीं ही परन्तु इसी हँसी मसखरापन के के कारण नवाब सआदत अली के यहां इनका अंत अच्छा नहीं हुआ। यद्यपि इन्होंने अपने लच्छेदार बातों से उन्हें परचा लिया था परन्तु दोनों के स्वभाव बेमेल थे जैसा कि इन्हीं के एक शैर से ज्ञात होता है—

रात वह बोले मुझसे हँसकर चाह मियां कुछ खेल नहीं।
मैं हूँ हँसोड़ औ तू है मुक़त्तअ मेरा तेरा मेल नहीं॥

इन्हें मेले तमाशे का बहुत शौक़ था और मित्रों का अनुरोध भी रहता था इससे इन्हें बहुधा नवाब साहिब से छुट्टी माँगने को वाध्य होना पड़ता था और वे मेले तमाशे से चिढ़ते थे। जाते समय यदि वे व्यय के लिए कुछ माँगते तो नवाब साहब को बुरा मालूम होता था। इन सब बातों से नवाब का हृदय इनकी ओर से फिर गया था। उन्हीं दिनों एक दिन जलसे में रईसों के वंश की शुद्धता और वर्णशङ्करता पर तर्क हो रहा था कि नवाब साहब ने कहा कि क्यों भई, हम भी नजीबुलतरफ़ैन (जो माता और पिता दोनों ओर से शुद्ध और उच्चवंशीय हो) हैं? नवाब सआदतअली के पिता नवाब

शुजाउद्दौला का केवल एक विवाह उम्मतुज्ज़ोहरा बेगम से हुआ था। जिनकी पदवी बहू बेगम साहबः थी और उन्हें केवल एक सन्तान नवाब आसफ़ुद्दौला थे। नवाब शुजाउद्दौला को हरम से २५ पुत्र और २२पुत्रियाँ थीं। इन्हीं में स्यात् गुन्ना बेगम से, जो क़ज़िलबाश ख़ाँ उमेद की पुत्री थी, नवाब सआदत अली खाँ का जन्म हुआ था। दैवकोप से कहिए, कुटिल कर्म के कुचक्र से कहिए या अधिक मुँह लगने के कारण सैयद इंशा के मुख से निकल गया कि हुजूर, अनजब। नवाब साहब चुप और कुल दरबारी चुप! इंशा ने अनेक बातें बनाकर उस बात को उड़ाना चाहा परन्तु मुख से निकली हुई बात और धनुष से छुटा हुआ तीर कभी नहीं लौटता। यह शब्द इस कहावत का एक अंश है कि 'वल्दुलूजारियते अनजबो' अर्थात् लौंडी से उत्पन्न भी शुद्ध है।

नवाब साहब के हृदय से यह खटक नहीं निकली और वह इस विचार में रहने लगे कि कोई बहाना मिले तो इन्हें दण्ड दूँ। इंशा अनेक प्रकार की बातों और चुटकुलों से उस खटक को निकाल देना चाहते थे परन्तु उसमें सफलता नहीं मिलती थी। किसी दिन इंशा ने एक अच्छा क़िस्सा कह सुनाया, जिस पर नवाब साहब ने कहा कि इंशा जब कहता है तब ऐसी बात कहता है, जो न देखा हो

न सुना हो । इन्होंने मोछों पर ताव देते हुए कहा कि हुजूर के इक़बाल से मैं ऐसे किस्से कहानी प्रलय तक कहता जाऊँगा, जो न देखने में और न सुनने में आई हों। नवाब साहब तो अवसर ढूँढते ही थे, उन्होंने झट क्रुद्ध स्वर से कहा कि अधिक तो नहीं, केवल दो ऐसे किस्से रोज सुना दिया कीजिए पर साथ ही यह कि न देखे हों और न सुने हों, नहीं तो खैर नहीं। इंशा भी ताड़ गए कि बात बिगड़ गई। कुछ दिन योंही चला पर अन्त में दरबार जाते समय पास बैठे हुए लोगों से पूछते कि कोई नया किस्सा सुना हो तो बतलाइए। कोई क्या बतलाता और कितने दिनों तक। एक दिन सआदत अली खाँ ने इन्हें बुलाने के लिए चोबदार भेजा, पर यह किसी दूसरे रईस के यहाँ गए हुए थे। चोबदार ने जब यह जाकर कह दिया तब नवाब ने इन्हें दूसरे अमीरों के यहाँ न जाने की आज्ञा दी जिससे इन्हें बहुत कष्ट हुआ।

इन्हीं दिनों इन पर शोक का पहाड़ टूट पड़ा अर्थात् इनके युवा पुत्र तआलुल्लाह खाँ की मृत्यु हो गई, जिससे इनकी बुद्धि में कुछ फ़र्क़ आ गया। यह यहाँ तक बढ़ा कि एक दिन नवाब सआदतअली खाँ की सवारी इनके घर की ओर से जा रही थी कि शोक और क्रोध के मारे रास्ते ही में खड़े होकर नवाब को बुरा भला कह डाला। नवाब ने महल

में पहुँचकर उनका वेतन बंद कर दिया, जिससे पागलपन में कुछ भी कमी नहीं रह गई।

सैयद इंशा का जीवनचरित्र सांसारिक प्रगति अर्थात् संसार के उतार और चढ़ाव का बहुत ही सच्चा और उपदेशमय चित्र है, जिसके पढ़ने से किसी सच्चे हृदय में अवश्य विरक्ति का भाव उत्पन्न हो जाएगा। यह कपोलकल्पित औपन्यासिक कथा मात्र नहीं है परंतु वस्तुतः घटित घटनाओं का आदर्श चित्रण है जिससे मायाजाल में फँसे प्रत्येक मनुष्य को उत्तम शिक्षा मिल सकती है। कहाँ एक वह समय था कि दिल्ली के सम्राट् शाहआलम के प्रिय कृपापात्र होने से और लखनऊ आने पर नवाब सआदत अली खाँ की नाक के बाल हो जाने से इनके द्वार पर घोड़े, हाथियों, पालकी और नालकी का ऐसा जमघटा रहता था कि जल्दी रास्ता नहीं मिलता था और कहां वह समय आ गया कि वह अपने ही घर में बिना हथकड़ी बेड़ी के क़ैद हो गए। इस गिरती हुई दशा में वेतन का बंद होना बहुतही कष्टकर हो गया। धीरे धीरे वह सब ऐश्वर्य भी विलीन हो गया और वे रोटियों के मुहताज हो गए।

सैयद इंशा के अंतरंग मित्र सआदतयार खाँ 'रंगीं' इसी समय के एक दृश्य का वर्णन करते हैं कि जब वे घोड़ों के व्यापार के लिए लखनऊ गए और एक सराय में उतरे तब

उन्हें सन्ध्या को मालूम हुआ कि पासही एक कविसभा होने वाली है। वे भी तैयार होकर वहाँ पहुँचे जहाँ लगभग दो तीन सौ के मनुष्य एकत्र होकर बैठे बातचीत कर रहे थे और गुड़गुड़ी सटका रहे थे। इतने ही में देखते हैं कि एक मनुष्य मैले कपड़े पहिरे, सिर पर मैला फेंटा बाँधे, गले में एक थैला डाले और हाथ में हुक्का लिए आया और साहब सलामत कर बैठ गया। उसने हुक्का चढ़ाकर आग माँगी जिसपर लोग सटक पेचवान आदि लाने लगे परन्तु इससे वह बिगड़ उठा और कहने लगा कि साहबो हमें अपनी हाल में रहने दो, नहीं तो मैं जाता हूँ। सब ने उसकी आज्ञा मान ली, तब थोड़ी देर बाद उसने फिर पूछा कि भाई, क्या अभी सभा आरंभ नहीं हुई? लोगों ने कहा कि अभी सब साहब नहीं आए हैं, उनके आजाने पर आरंभ होगी। वह बोला कि साहब, हम अपनी ग़ज़ल पढ़ देते हैं। यह कह कर ग़ज़ल निकालकर पढ़ना आरंभ कर दिया:—

कमर बाँधे हुए चलने को याँ सब यार बैठे हैं।
बहुत आगे गए बाक़ी जो हैं तैयार बैठे हैं॥ १॥
न छेड़ ए निगहते बादे बहारी राह लग अपनी।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेज़ार बैठे हैं॥ २॥
तसौव्वर अर्श पर है और सर है पाए साक़ी पर।
ग़रज़ कुछ ज़ोर धुन में इस घड़ी मैख़्वार बैठे हैं॥ ३॥

बसाने नक़्शपाए रहरवाँ कूए तमन्ना में ।
नहीं उठने की ताक़त क्या करें लाचार बैठे हैं ॥ ४ ॥
यह अपनी चाल है उफ्तादगी से अब कि पहरों तक ।
नज़र आया जहाँ पर सायए दीवार बैठे हैं ॥ ५ ॥
कहाँ सब्रो तहम्मुल, आह ! नंगो नाम क्या शै है ।
मियाँ रो पीट कर इन सबको हम एकबार बैठे हैं ॥ ६ ॥
नजीबों का अजब कुछ हाल है इस दौर में यारो ।
जहाँ पूछो यही कहते हैं हम बेकार बैठे हैं ॥ ७ ॥
भला गर्दिश फ़लक की चैन देती है किसे 'इंशा' ।
ग़नीमत है कि हम सूरत यहाँ दोचार बैठे हैं ॥ ८ ॥

सैयद साहब तो यह ग़ज़ल पढ़कर और काग़ज़ फेंककर साहब सलामत करते हुए चलदिए, पर कविसभा में सन्नाटा सा छागया । क्यों न हो, यह दिल जले मनुष्य के हृदय के फफोलों का सच्चा उद्गार था । इसका सुननेवालों पर जो ऐसा असर पड़ा तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं । इस ग़ज़ल का केवल अर्थ नीचे देदिया जाता है, व्यर्थ की टिप्पणी की क्या आवश्यकता ? प्रत्येक अनुभवी और समझदार पुरुष को उसका नित्यप्रति अनुभव होता है जो इस ग़ज़ल में दिखलाया गया है ।

वर्तमान समाज के असंख्य मित्र गण आगे जा चुके हैं

और जो बचे हुए हैं वे भी कमर बाँधकर चलने को तैयार बैठे हुए हैं ॥ १ ॥

हृदय ऐसा टूट गया है कि सुगंधित समीर के लगने से आप उससे भी बिगड़ गए और कहने लगे कि अरे मुझे क्या छेड़ता है ? जा अपना रास्ता ले । तुझे अठखेलियाँ सूझ रही है और मैं दुख में बैठा हुआ हूँ ॥ २ ॥

शिर यहाँ माया के फंद में फँसा है और उसीके आंतरिक विचार परमेश्वर के सिंहासन तक पहुँचे हैं अर्थात् ये सांसारिक मनुष्य किसी धुन में इस समय यहां बैठे हुए हैं ॥३॥

पथिकों के पदचिन्ह की नाईं हम भी इस इच्छा रूपी गली में निरुपाय होकर बैठे हैं, क्या करें उठने की शक्ति नहीं है ॥ ४ ॥

दीनता के कारण अब यह हाल है कि जहां दीवार का साया मिलगया वहाँ पहरों पड़े हुए हैं ॥ ५ ॥

संतोष, धैर्य, लज्जा और ख्याति क्या वस्तु है और कहां है ? अरे, इन सब को हम रो पीट चुके हैं, इन के किए कुछ नहीं होता । इसीसे निराश हो बैठे हैं ॥ ६ ॥

वर्तमान समय में भले आदमियों का विचित्र हाल है, जिससे पूछो वही कहता है कि हम निराश्रय हैं ॥ ७ ॥

इंशा कहते हैं कि यह संसारचक्र किसे सुख करने देता है । यही बहुत कुछ है कि यहां दो चार मित्र बैठे हुए हैं ॥८॥

सआदतयार खाँ ने जब उनकी ग़ज़ल सुनी तब पहिचाना और घर पर जाकर उनसे भेंट की। इसके अनंतर उनकी और भी दुर्दशा हुई। उन्हीं के मित्र सआदतयार खाँ का कथन है कि जब इसके अनंतर वह फिर दिल्ली से लखनऊ आए और उनके घर पर गए तो दरवाज़े पर धूल उड़ती मिली। दरवाज़ा खटखटाया तो किसी वृद्धा ने पूछा कि कौन है? यह वृद्धा सैयद इंशा की स्त्री थी और उसने इनको नाम लेने पर पहिचाना और कहा कि भाई मैं हट जाती हूँ, भीतर आकर उनकी हालत देखो। यह भीतर जा कर देखते है कि नंगे बदन एक कोने में घुटनों पर सिर रखे हुए बैठे हैं, आगे राख का ढेर है और टूटा हुआ हुक्का रखा है। शोक के साथ लिखते हैं कि इनकी इस दुर्दशा से संसार की असारता स्पष्ट मालूम होती थी। एक वह ऐश्वर्य और वैभव का जमघट और दूसरे यह समय। ऐसीही दुर्दशा में कष्ट उठाकर सं० १८७५ में इनकी मृत्यु हो गई।

मुंशी बसंतसिंह 'निशात' ने तारीख़ कही कि—

साले तारीख़ ओ ज़े जाने अजल।
उर्फ़िए वक्त बुवद इंशा गुफ्त॥ (१२३३ हि०)

[इंशा की रचनाएँ]

इनके वृतांत से यही मालूम होता था कि इनकी लेखनी

से अनेकानेक रचनाएं निकली होंगी परंतु केवल निम्नलिखित पुस्तकों का पता चलता है:—

१. कुलिआत अर्थात् काव्यसंग्रह—इसमें सैयद इंशा के काव्यों और फुटकर कविताओं का संग्रह है जिनके नाम क्रम से इस प्रकार हैं:—

१. ग़ज़लों का दीवान ।
२. रेख़्ती का दीवान और पहेलियाँ आदि ।
३. क़सीदे—ख़ुदा, बादशाह, सर्दारों आदि पर ।
४. क़सीदे (फ़ारसी) ।
५. फ़ारसी ग़ज़लों का दीवान ।
६. मसनवी शीर बिरंज (फ़ारसी) ।
७. मसनवी बे नुक़ते की ,, ।
८. शिकारनामा, नवाब सआदतअली ख़ाँ का (फ़ारसी)
९. हजोएँ—मक्खी, खटमल, मच्छड़, मनुष्यों आदि पर ।
१०. मसनवी आशिक़ानः ।
११. हाथी और चंचलप्यारी हथिनी का विवाह ।
१२. फुटकर कविता, पहेली आदि ।
१३. बे नुक़ते का दीवान ।
१४. मातए आमिल (फ़ारसी) ।
१५. मुर्ग़ नामः ।

२. दरियाए लताफ़त—इसके दो भाग हैं । प्रथम भाग

में इंशा ने उर्दू का व्याकरण दिया है। दूसरा भाग मिर्ज़ा क़तील का लिखा हुआ है।

३. रानी केतकी की कहानी—यह कहानी ठेठ हिंदी में लिखी गई है जिसमें अरबी फारसी के एक शब्द भी नहीं आए हैं। इसमें भी अपनी हँसी मसखरेपन के नमूने देना नहीं भूले। हिंदी गद्य साहित्य के इतिहास में इनका स्थान इसी पुस्तक के कारण पं० लल्लूलालजी और पं० सदल मिश्र के समकक्ष है।

ग़ज़लों का दीवान—इस संग्रह के देखने से मालूम हो जाता है कि इनकी भाषा कितनी परिपक्क थी और इनका उसपर कितना अधिकार था। "भाव अनूठो चाहिए, भाषा कैसिहु होय।' की उक्ति इनके कविता में नहीं चरितार्थ हो सकती। इनके भाषा की प्रांजलता और परिपक्कता का प्रति पंक्ति से पता चल सकता है। जिन ग़ज़लों में भाव आदि अच्छे आगए हैं वे अद्वितीय हैं और जहाँ वे नहीं आ सके वहाँ भाषा का अनूठापन देखिए। छंद शास्त्र के नियमों की भी वह परवा नहीं करते थे। केवल इस कारण कि जब भाव या विचारों का मौज उमड़ता था तब भाषा जो उनकी अनुवर्तिनी थी उससे जैसा चाहते थे वैसा स्वरूप खड़ा कर लेते थे।

दीवाने रेख़्ती—छोटा संग्रह है। यद्यपि रेख़्ती के जन्म-

दाता सआदतयार ख़ाँ 'रंगीं' हैं परंतु सैयद इंशा ने भी इसमें नए नए रंग की बात और अच्छे अच्छे ढंग निकाले हैं। दिल्ली से कहीं अधिक लखनऊ में इसकी उन्नति हुई। इस ढंग में इंशा की पहेलियाँ, जादू के नुसख़े आदि विचित्र प्रकार से लिखे गए हैं।

क़सीदे—ये भी बड़े धूमधाम से लिखे गए हैं। इंशा के शब्दाडम्बर और कल्पनाओं की उच्चता इनमें साफ़ झलकती है। कोई अच्छा भाव सूझ गया कि उन्होंने उसे क़सीदे में बाँध दिया, चाहे वह उसके योग्य होया न हो, परंतु उनके भावों में सर्वदा एक प्रकार की विचित्रता रहती थी जिससे पढ़ने और सुनने वाले उसकी प्रशंसा करने लगते थे। फ़ारसी, तुर्की और अरबी में भी क़सीदे कहे हैं जिनसे इनकी उन भाषाओं की योग्यता प्रकट होती है। फ़ारसी की इनकी योग्यता बहुत बढ़ी चढ़ी हुई थी परंतु उसमें भी वही हँसी मसख़रापन और वही शब्दों की भारी योजनाएँ भरी हैं। इसी में एक क़सीदः बिना नुक़ते अर्थात् बिंदी का कहा है और उसे तौरुलकलाम नाम दिया है।

दीवान फ़ारसी—छोटा सा संग्रह है, जिसमें लगभग पचहत्तर ग़ज़लें हैं। भाषा बहुत परिमार्जित और अनूठी है परंतु वही बाहरी तड़क भड़क देख लीजिए, अंतरात्मा का लेश नहीं है। भाषा पर इनका जो प्रभुत्व था यदि उसके

साथ गांभीर्य और गवेषणा भी होती तो यह अपने समय के सादी या ख़ुसरो होते।

मसनवी शीर बिरंज और मसनवी बे नुक़त—ये दोनों फ़ारसी में है। पहिली मौलाना रूम के चाल पर लिखी गई है। इसमें बहुत सी कहानियाँ हैं जिन्हें कविता में सजाया है। मसनवी बे नुक़त भी फ़ारसी में है और केवल तीन पृष्ठों में समाप्त होगई है।

शिकारनामा—इस में तीन पृष्ठों में नवाब सआदतअली ख़ाँ के शिकार का वर्णन है। यह फ़ारसी में है और वर्णन बहुत उत्तम है।

हजोएँ, मसनवी फ़ील—दोनों उर्दू में हैं। हजोएँ अच्छी कही है। मसनवी फ़ील में एक हाथी और चंचल प्यारी हथिनी का विवाह बड़े धूमधाम से किया है। इसका उत्तरार्द्ध अत्यंत अश्लील है। इसी मसनवी के साथ बहुत से क़ितः, पहेली, चीस्ताँ आदि भी है पर सभी हँसी मसख़रापन से भरे हैं।

दीवान बे नुक़त—परिश्रम का फल मात्र है।

मसनवी मातए आमिल—अरबी भाषा का कुछ हाल फ़ारसी कविता में लिखा है।

मुर्ग़नामः—उर्दू में छोटी सी मसनवी है।

दरिआए-लताफ़त—उर्दू साहित्य का यह प्रथम व्याकरण है और गद्य साहित्य में इससे प्राचीनतर दो ही एक पुस्तक प्राप्य हैं। इस पुस्तक की भाषा में भी वही हंसोड़पन भरा हुआ है और आरंभ में उर्दू बोलनवालों की भिन्न भाषाओं के नमूने दिए गए हैं, जिनमें अश्लीलता की मात्रा कम नहीं है। यह पुस्तक दो भागों में विभाजित है। पूर्वार्द्ध सैयद इंशा की रचना है और उत्तरार्द्ध मिर्ज़ा क़तील की कृति है। परंतु इस स्नान घर में सभी नंगे हैं और मिर्ज़ा क़तील के उदाहरणों में भी अश्लीलता और हंसोड़पन भरा हुआ है। मिर्ज़ा क़तील ने छंद शास्त्र पर लिखा है और फ़ारसी नामों के स्थान पर हिंदी नाम रखा है जैसे मुरब्बः का चौकड़ा और मुसल्लस का तिकड़ा आदि।

रानी केतकी की कहानी—इसके विषय में भूमिका में पूर्णतया विचार किया जायगा। यह कहानी भी समग्र आगे दी गई है।

[इंशा की भाषा]

सैयद इंशा फ़ारसी और उर्दू के प्रसिद्ध विद्वान और सुकवि थे, अरबी के भी अच्छे ज्ञाता थे और भारत की अनेक भाषाओं का—पूरबी, ब्रजभाषा, पंजाबी आदि—भी इन्होंने अपनी कविता में प्रयोग किया है। ये प्रयोग ऐसी सफाई के साथ किए गए हैं कि वे कहीं खटकते नहीं। इनके समय में लखनऊ में अंग्रेज़ों का रहना आरंभ होगया था, इसलिए

सैयद इंशा ने अंग्रेजी भाषा को भी नहीं छोड़ा और उस भाषा के बहुत से शब्दों का अपने गज़लों में प्रयोग किया है। एक कसीदः जौर्ज तृतिय की राजगद्दी के समय लिखा था, जिसका कुछ अंश उद्धृत किया जाता हैं।

बग्गियाँ फूलों की तैयार कर ऐ बूए समन।
कि हवाखाने को निकलेंगे जवानाने चमन ॥
कोई शबनम से छिड़क बालों पै अपने पोडर।
कुर्सिए नाज़ पै जिलवः की दिखावेगा फबन ॥
अपने गीलासे शिगूफः भी करेंगे हाज़िर।
आके जब गुंचए गुल खोलेंगे बोतल के दहन ॥
औरही जलवे निगाहों को लगेंगे देने।
ऊदी बानात की कुर्ती से शिकोहे सौसन ॥
पत्ते हिल हिलके बजावेंगे फ़िरंगी तंबूर।
लालः लावेगा सलामी को बनाकर पलटन ॥
खींचकर तार रगे अब्रेबहारी से कई।
खुद नसीमे सहर आवेगी बजाती अर्गन ॥
अपनी संगीनें चमकती हुई दिखलावेंगे।
आपड़ेगी जो कहीं नहृ पै सूरज की किरन ॥
अर्दली के जो गिरांडील हैं होंगे सब जमअ।
आनकर अपना बिगुल फूँकेगा जब सुखदर्सन ॥

आएगा नज़्र को शीशः की घड़ी लेके हुबाब।
यासमीं पत्तों के पीनस में चलेगी बन ठन ॥
निगहत आवेगी निकल खोल कली का कमरा।
साथ हो लेगी नज़ाकत भी जो है उसकी बहिन ॥*

इन शैरों का अर्थ साफ़ है इस लिए इसके लिखे जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

उर्दू-साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि उर्दू की काव्य तथा गद्य भाषा का विकास प्रधानतः इसी सिद्धान्त पर हुआ है कि उसमें उसकी जन्मदात्री हिन्दी के शब्दों के बहिष्कार तथा फ़ारसी और अरबी शब्दों की भरमार कर सलासत व बलागत (माधुर्य और ओज) लाया जाय। आरम्भिक काल के कवियों से आरम्भ कर आधुनिक काल के कवियों की कृतियों से उदाहरण उद्धृत कर यह स्पष्टतया दिखलाया जा सकता है पर स्थानाभाव से ऐसा नहीं किया गया है। इस समय उर्दू के किसी प्रसिद्ध पत्र से एक पारा उठा लीजिये और उसमें से ने, का, है आदि

---

* हवाखाना=एयरिंग Airing। Powder=पोडर। Bottle=बोतल। Tambourine=तंबूर। battalion=पलटन। Organ=अर्गन। संगीन=बायोनेट Bayonet। Orderly=अर्दली। Grenadier=गिराँडील। Bugle=बिगुल। Watch=घड़ी। Pinnace=पीनस। Camera=कमरा।

कुछ इने गिने शब्द हटाकर फ़ारसी के अस्त आदि शब्द रख दीजिये, तब आप देखेंगे कि फ़ारसी और उर्दू में कितनी भिन्नता रह जाती है। इसी उर्दू को, जो अब वास्तव में फ़ारसी हो रही है और जिसे भारत के नब्बे सैकड़े मुसल्मान भी सुगमता से नहीं समझ सकते, लोग हर एक भारतीय राष्ट्र संस्थाओं में घुसेड़ कर उसे पारसीय बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। अस्तु,

उर्दू-साहित्य में इंशा का समय प्रायः मध्य-काल में आता है और इसी कारण देखा जाता है कि इनकी कृतियों में दोनों का पूरा मेल है। [शुद्ध हिन्दी, शुद्ध फ़ारसी तथा बीच की उर्दू तीनों ही में इन्होंने रचनाएँ की हैं। उर्दू में इन्हीं के समय में ही घराऊ शब्दों की कमी तथा बाहरी की अधिकता होती रही थी और इनकी उर्दू कविता में भी ऐसा हुआ है। इतने पर भी नित, टुक, अँखड़ियाँ, झुमकड़ा आदि शब्द इनकी कविता में मिलते हैं। इतना ही बहुत है।

भाषा के साथ साथ इन्होंने अपनी कविता में इस देश के रस्म, प्राकृतिक दृश्य, कथानक आदि को भी स्थान दिया है जिसमें उनका जीवन व्यतीत हुआ था। उर्दू के लगभग सभी कवियों ने ईरान, तूरान, मिश्र आदि देशों की दजलः, फरात आदि नदियों, कोहेबेसतूँ, कसे शीरीं आदि पहाड़ों का खूब वर्णन किया है जिनमें से किसी को भी स्यात्

उन्होंने नहीं देखा था पर गंगा जमुना आदि नदियों तथा हिमालय, विंध्य आदि पर्वतों का जिक्र भूल कर न कर सके जिनकी आबोहवा में वे पले थे। कृतज्ञता प्रगट करने के ये नए रास्ते हैं। प्रो० आज़ाद ने लिखा है कि 'यह बात लुत्फ़ से नहीं ख़ाली है कि अपने मुल्क के होते अरब से बख़्ज़ को हिन्दुस्तान में लाना क्या जरूर है?' पर प्रोफेसर साहब भूल गए कि अपना मुल्क अभी तक अरब का रेगिस्तान ही समझा जाता है, वादिए गंग नहीं। अस्तु, अब इंशा की रचना से कुछ ऐसे उदाहरण दिए जाते हैं जिनसे पूर्वोक्त बातें स्पष्ट हो जाएँ।

टुक आँख मिलाते ही किया काम हमारा।
तिसपर यह ग़ज़ब पूछते हो नाम हमारा॥

फबन, अकड़, छब, निगाह, सजधज, जमालो-तर्जे-खिराम आठों।
न होवें उस बुत के गर पुजारी तो क्यों हो मेले का नाम आठों॥

नहीं कुछ भेद से खाली यह तुलसीदास जी साहब।
लगाया है जो एक भौंरे से तुमने आँख का जोड़ा॥

लिपट कर कृष्ण जी से राधिका हँसकर लगीं कहने।
मिला है चाँद से एलो अँधेरे माघ का जोड़ा॥

पूरबी अवधी के एक ग़ज़ल के दो शेर भी उदाहरण रूप में दिए जाते हैं—

मुत्फ़िकिरी में फिक्र भई मुफ्त आय के ।
झाऊ मियाँ के भूँ पै जो पटकिस घुमाय कै ॥
इन्सालः खाँ मियाँ बड़े फाज़िल जहीन हैं ।
सदरः पढ़े हैं जिन सेती तलिबुल्म आय कै ॥

[हिंदी-गद्य साहित्य में इंशा का स्थान]

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित प्रेमसागर की भूमिका में मैंने हिंदी गद्य-साहित्य-विकास शीर्षक लेख में लल्लू लालजी के समय तक के हिंदी गद्यलेखकों का संक्षिप्त विवरण तथा उनकी कृतियों से उदाहरण भी दिया है । इस छोटी सी पुस्तक में उससे विस्तृत लेख के समावेश करने का स्थान नहीं है और उसी लेख को पुनः ज्यों का त्यों इसमें दे देना अनावश्यक है इसलिए केवल 'इंशा' के समकालीन गद्यलेखकों ही पर विचार करना उचित है ।

सं० १८६० में डा० जौन ग्रिलक्राइस्ट की आज्ञा से लल्लूलालजी ने प्रेमसागर आदि कई ग्रंथ और सदल मिश्र ने चंद्रावती नामक पुस्तक हिंदी खड़ी बोली में लिखी थी । लल्लूलाल ने कई पुस्तकें लिखी थीं इस लिए वे उन दो लेखकों में से विशेष महत्व के समझे गए । उस समय तक उसके पहले के लिखे गए हिन्दी गद्य के किसी ग्रन्थ का पता स्यात् कलकत्ते के साहित्यसेवियों को नहीं था और वे

यह भी नहीं जानते थे कि उसी समय लखनऊ तथा प्रयाग में खड़ी बोली हिन्दी में दो ग्रन्थकार निज रचनाओं का निर्माण कर रहे थे। इस कारण आँग्ल तथा उन्हीं द्वारा प्रभावान्वित साहित्यसेवियों ने लल्लूलाल जी ही को हिन्दी-गद्य-साहित्य का जन्मदाता मान लिया और यह भ्रम बहुत दिनों बना रहा। पर अब हिन्दी साहित्य की विशेष रूप से जाँच पड़ताल होने पर उसी भ्रम को आँखें मूँद कर मान लेना अनुचित है।

प्रेमसागर की भूमिका में लल्लूलालजी तथा इस ग्रन्थ में इंशाअल्लाह खां का पूर्ण परिचय दे दिया गया है। सदल मिश्र का भी संक्षिप्त विवरण प्रेमसागर में दिया गया है पर मुंशी सदासुखलाल के विषय में उस समय तक कुछ न ज्ञात होसका था। इधर कुछ पता लगा है जिसका संक्षेप में उल्लेख कर दिया जाता है।

मुंशी सदासुखलाल देहलवी 'नियाज' का जन्म दिल्ली में हुआ था। ईसवी अठारहवीं शताब्दि के अन्त में यह कम्पनी की अधीनता में चुनार में अच्छे पद पर नियुक्त थे। यह अपनी पुस्तक 'मुंतख़बुत्तवारीख़' में स्वयं लिखते हैं कि पैंसठ वर्ष की अवस्था में नौकरी छोड़कर ये प्रयाग चले आये, जहाँ उस समय अंग्रेजों का अधिकार हो चुका था, और वहीं आराम से रहने लगे। दश वर्ष में इन्हों ने १२५००

पंक्ति फारसी, उर्दू और भाषा की कविता की और ५००० पृष्ठ गद्य लिखा। इसके अनन्तर इन्होंने अपने इतिहास 'मुंतखबुत्तवारीख' में हाथ लगाया जो सन् १२३४ हि० (१८१८–१९ ई०) में समाप्त हुई। इनके अन्य ग्रन्थों में तंबीहुलजाहिलीन, मुंत्तखिबे बेबदल आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अंतिम मुसलमान बादशाहों के कुप्रबन्ध की खूब प्रशंसा की है।

इस प्रकार खड़ी बोली हिन्दी के आरंभिक चार हिन्दी गद्य–लेखकों का परिचय मिलने पर किसी एक को हिन्दी–गद्य–साहित्य का जन्मदाता कहना ही भूल है। यह आरम्भ चार लेखकों ने किया है और उस श्रेय के भागी चारों ही हो सकते है, इस लिए उस पदवी को तोड़ देना ही उचित है, जैसा कि प्रेमसागर की भूमिका में पहले ही प्रस्ताव किया जा चुका है।

हिन्दी के पद्य–साहित्य में जिस प्रकार रहीम, रसखान, जायसी आदि मुसलमान कवियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है उसी प्रकार गद्य–साहित्य के आरम्भ में एक मुसलमान का योग देना भी महत्वपूर्ण सथा शुभ–सूचक है।

[उर्दू–साहित्य में इनका स्थान तथा रचनाशैली]

जिस समय इंशा कविता–क्षेत्र में उत्तीर्ण हुए थे वह समय ही कुछ ऐसा था कि उसमें सुकविगण अपने शुभ

विचारों, स्वभाविक उद्गारों तथा स्वच्छ भावों को कविता में प्रकट करने के बदले अपने आश्रयदाताओं के विनोद तथा मनोरंजन के लिए उनके मनोनुकूल कविता करने के लिए बाध्य थे। वे आश्रयदातागण कवियों को वेतनभुक्त समझते थे और अपने मनोरंजन की विदूषकादि के चाल पर एक साधारण सामग्री मानते थे। ये कविगण यदि अपने प्रभु को प्रसन्न न रख सकें तो नौकरी से अपने को बरतरफ समझें। तात्पर्य यह कि ऐसी अवस्था में किसी भी सुकवि की प्रतिभा तथा कवित्वशक्ति हँसोड़ और मसखरेपन में समाप्त हो जाती है। जैसे ये आश्रमदाता, दैवदुर्विपाक से कहिए या समय का प्रभाव कहिए, मिले थे वैसेही उस समय के कविगण भी थे जो विद्याभिरुचि से नहीं, तर्कवितर्क तथा शास्त्रार्थ से बुद्धि-विद्यारूपी शस्त्र पर जिला देने के लिए नहीं प्रत्युत् अपने मालिक को प्रसन्न कर तथा रिझाकर, कविता से नहीं धौल धप्पड़ हजो आदि से, वेतन सिझाने में लगे थे। इंशा तथा मुसहिफ़ी के झगड़े ऐसेही हैं। सभ्य बीसवीं शताब्दी में ऐसे दृश्य कभी कभी साहित्य की संवर्द्धिनी सभा समितिओं में, संस्था के दो एक मुखियों को प्रसन्न करने के लिए या पत्र पत्रिकाओं में समालोचना की आड़ में तू तू मैं मैं कर जनसाधारण को प्रसन्न करने के लिए व्यर्थ दिखलाते रहते है। तत्कालीन बेताब का यह कथन वास्तव में सत्य है कि

'इंशा की विद्वत्ता को कविता ने और कविता को नवाब सआदतअली ख़ाँ की दरबारदारी ने नष्ट करदिया।'

इस प्रकार के आश्रय का इंशा की कविता पर अच्छा असर नहीं पड़ा और यही कारण है कि उनकी कविता में अधिक स्थलों पर भाव-गांभीर्य तथा विचारों की स्वच्छता के बदले छिछोरापन, अश्लीलता और हँसोड़पन भरा है। इंशा में धनतृष्णा विशेष थी जैसा कि इनके चरित्र से ज्ञात होता है और उसके संचय में वे बराबर लगे रहे पर अंत में फल उलटा ही मिला। केवल काव्यकौशल से विनोद की ऐसी बातों को कवितावद्ध करना ही इनका कार्य होगया था कि जिसे सुनकर लोग हँस पड़ें। तात्पर्य यह है कि ये समय के प्रवाह में स्वयं पड़ गए और इतना ऊँचे न उठ सके कि उसे अपने साथ ले चलने का प्रयत्न ही करते। इनकी कृतियों में उच्च कोटि की भी कृतियाँ बहुत हैं। एक कविसभा में इन्हों ने कुल पाँच शैर की एक ग़ज़ल पढ़ी थी जिसका मतलअ यों है।

लगा के बर्फ़ में साक़ी सुराहिए मै ला।
जिगर की आग बुझे जिससे जल्द वह शै ला॥

जुरअत और मुसहिफ़ी से कवि उपस्थित थे पर सब ने अपनी कविता रख दी कि अब हमलोगों का पढ़ना व्यर्थ है।

इंशा का यौवन काल था जब कि इन्हों ने एक कवि सभा में एक ग़ज़ल पढ़ी जिसका पहिला शैर है—

झिड़की सही अदा सही चीने जबीं सही ।
सब कुछ सही पर एक नहीं की नहीं सही ॥

और जब यह शैर पढ़ा कि—

गर नाज़नी कहे से बुरा मानते हो तुम ।
मेरी तरफ़ तो देखिए मैं नाज़नीं सही ॥

तब उर्दू साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि मिर्ज़ा रफीअ 'सौदा' जो वहाँ उपस्थित थे उन्हों ने कहा कि 'दरईं चे शक' ।

इंशा प्रतिभासंपन्न थे, अनेक देशी भाषा के विज्ञ थे और फारसी तथा अरबी के विद्वान थे। इनमें कविता—चातुरी पूर्ण रूप से थी । क़सीदे पढ़िए और देखिए कि कैसा ओज और जोश है । फारसी उर्दू कहते कहते एकाएक किसी अरब या अफ़गान या तुर्क की बोली सुन लीजिए और कहीं व्रजभाषा, अवधी आदि का स्वाद लीजिए । बेनुक़ते की कविता आदि लिखने में परिश्रम भी खूब किया है और इसी से अपने समय के अमीर खुसरो कहे जाते हैं ।

कुछ लोग का यह आक्षेप है कि इनकी कविता में अशुद्धियाँ आदि है जिनसे वह परवर्ती कवियों के लिए सनद नहीं हो सकती । ये अशुद्धियां अवश्य हैं पर वे इस कारण नहीं आगई हैं कि ये उनसे अनभिज्ञ रहे हों । ये प्रायः निरंकुशता ही के कारण हुई हैं और ये उनका परवाह न कर के छोड़ गए है । केवल ऐसी अशुद्धियों के कारण ऐसा

आक्षेप कुल कविता पर कर देना अनुचित है। इनकी कविता पर अश्लीलता का आक्षेप भी ठीक ही है पर जैसा दिखलाया जा चुका है कि वह समय का प्रभाव था। ठीक उसी समय की दो आख्यायिकाओं की हस्तलिखित प्रतियां मेरे पास हैं जिनके लेखक ने अपना नाम इस प्रकार दिया है—सैयद मुहम्मदअली उर्फ मीर बिस्मिल्ला मुतख़ल्लुस बशायर। आप ने ये पुस्तकें भी तत्कालीन बड़े लोगों के मनोरंजनार्थ लिखी हैं पर स्यात् उसे पढ़ कर अश्लीलता भी लज्जा के मारे रो देगी। जो कुछ हो, अश्लीलता लाना अनुचित ही है पर कवि की स्थिति तथा समय पर विचार करते हुए सम्मति देना ही सम्मत है।

इस प्रकार 'इंशा' की कविता की गुण दोष चर्चा कर लेने पर स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि उर्दू साहित्य-इतिहास में इनका स्थान प्रथम श्रेणी के कवियों में लेने के सर्वथा योग्य है। इनकी उच्च कोटि की कविता उर्दू के अच्छे अच्छे कवियों की रचना के समकक्ष है और उर्दू साहित्य की अमूल्य संपत्ति है।

इंशा का काव्य

[१]

क्यों शहूर छोड़ आबिदं[1] ग़ारे जबलें[2] में बैठा ।
तू ढूँढता है जिसको है वह बग़ल में बैठा ॥
दिल में समा रहा है यों दाग़े इश्क़ अपने ।
जिस तरह कोई भौंरा होवे कँवल में बैठा ॥
सब यार तेरी दम का है यह शुमार जो मैं ।
याँ एक कल में ऊठा और एक कल में बैठा ॥
तारें नफस तरी हाथ अय यार मुझको तूने ।
खींचा तो पल में ऊठा छोड़ा तो पल में बैठा ॥
रहमत ख़ुदा की 'इंशा' सद आफरीं कि तुझसे ।
हर एक काफ़िया क्या गर्म इस ग़ज़ल में बैठा ॥

[२]

ख़्वासे एजाज़े[3] ईसवी क्यों न रक्खे साक़ी अयाग़[4] अपना ।
कि मिस्ल ख़ुरशीद चर्खें चारम पर इस घड़ी है दिमाग़ अपना ॥

---

१ उपासक । २ पर्वत । ३ वैसा स्वभाव जिससे किसीको मानसिक कष्ट हो । ४ मदिरा पात्र ।

खुदा हि जाने किधर सिधारे शकेबो[1] सब्रो क़रारो ताक़त।
हर एक उनमें से दे गई हैं हमारे सीनः को दाग़ अपना॥
जो लोग तशरीफ़ ले सिधारे अदमको उनकी मिले ख़बर क्या।
सुनो अचम्भा कि जीते जी है मिला न हमको सुराग़ अपना॥
शगून का एतमाद क्या है खमोशी है यह ज़ुबां दराज़ी।
हमारे रोने प मत हँसाकर सम्हाल मुँह ऐ चिराग़ अपना॥
न टोक उल्फत कि दाग़ को अब नजर लगा मत कहीं तू 'इंशा'।
टुक इसपै अलहम्द[2] फूँक पढ़कर कि हैं यह चश्मो चिराग़ अपना॥

[३]

परतौ से चाँदनी के है सेहन बाग़ ठंढा।
फूलों की सेज पर आ करदे चिराग़ ठंढा॥
शफ़क़त[3] से हाथ तू धर टुक दिलप मेरे ता हो।
यह आग सा दहकता सीने का दाग़ ठंढा॥
मै की सुराही ऐसी ला बर्फ में लगाकर।
जिसके धुँए से होवे साक़ी दिमाग़ ठंढा॥
तजनीस जिस दुनी की हो जोशे चश्म यारो।
हमने मुदाम पाया उसका ओजाग़[4] ठंढा॥

---

१ आनंद। २ ईश्वरकी कृपा है।
३ प्रेम। ४ चूल्हा।

हैं एक शख़्श लाते खस की शराब 'इंशा' ।
घो धा गुलाब से तू कर रख अयाग़ ठंढा ॥

[४]

रहरवाने इश्क ने जिस दम अलम आगे धरा ।
सदरः की सायः में दम ले फिर क़दम आगे धरा ॥
तुझ बिन ऐ साकी शराबे सब्ज का सागर नहीं ।
है मेरी आँखो में गोया जामे सुम[1] आगे धरा ॥
देखते ही कुछ लगा त्योरी चढ़ाने कल व शोख़ ।
फूल का दोना जो मैंने करके दम आगे धरा ॥
साईं अल्ला डहडहा सब्जः नहीं दरकार याँ ।
है न यह अफ़्यूँ का घोला बेशो कम आगे धरा ॥
जिसने यारो मुझसे दावा शैर के फ़न का किया ।
मैंने लेकर उसके काग़ज औ क़लम आगे धरा ॥
बैठता है जब तोंदीला शेख आकर बज्म में ।
एक बड़ा मटका सा रहता है शिकम आगे धरा ॥
'सैयद इंशा' वाँ करें हैं सैर बामे अर्श[2] पर ।
याँ कमन्दे आह का है पेचो खम आगे धरा ॥

---

१ विष ।

२ खुदा के बैठने का आसन ।

[५]

मैंने जो आ नशे में बुलबुल का मुँह चिढ़ाया ।
साक़ी ने कहके क़ह क़ह कुल कुल[1] का मुँह चिढ़ाया ॥
अल्लाह हज़रत आदम किस जुज़ का कल था हम में ।
जिस जुज़ ने अपने आखिर उस कल का मुँह चिढ़ाया ॥
पास उसके ज़ुल्फ़ के जो आए मुझे तो मैंने ।
सौ करके शाख़ सानः सुंबुलका मुँह चिढ़ाया ॥
यह लाल लाल डोरे खिल-खिल के फ़स्ले गुल में ।
नरगिस ने तेरे साक़ी याँ गुल को मुँह चिढ़ाया ॥
कल शेख़ पोपले को एक टूटे पुल के नीचे ।
मैंने कहा कि तुमने इस पुल का मुँह चिढ़ाया ॥
दो बातें फ़ारसी की सीख उसने 'मीर इंशा' ।
बस लखनऊ से सारे काबुल का मुँह चिढ़ाया ॥

[६]

दिल सितमजदः बेताबियों ने लूट लिया ।
हमारे क़िब्लः को वहाबियों[2] ने लूट लिया ॥
कहानी एक सुनाई जो हीर राँझे की ।
तो अहले-दर्द[3] को पञ्जाबियों ने लूट लिया ॥

---

१ बोतल से शराब उलेड़ने में होने वाला शब्द ।
२ मुसलमानों का एक संप्रदाय विशेष है ।
३ प्रेमपंथवाले ।

यह मौजे लालः खुदरू नसीम से बोले ।
कि कोहो दश्त को सैराबियों ने लूट लिया ॥
सबा[1] क़बीलए लैला में उड़ गयी यह ख़बर ।
कि नाक़ए[2] नज्द[3] को एराबियों[4] ने लूट लिया ॥
किसी तरह से नहीं नींद आती 'इंशा' को ।
उसी ख़याल में बेख़्वाबियों ने लूट लिया ॥

[७]

अब की यह सरदी पड़ी हर एक तारा जम गया ।
काँसए[5] चर्खे बरीं सारे का सारा जम गया ॥
चाँदसे मुखड़े को उसके देख गिर्दागिर्द से ।
चार चार अंगुश्त सूरज का किनारा जम गया ॥
कीमिया का शौक़ था जिनको अकड़ के बुत हुए ।
था जहाँ तक शह्र में मौजूद पारा जम गया ॥
सर्द मुहरी से जमानः के न पूछो हाल कुछ ।
उसमें जो था आह से निकला शरारा जम गया ॥
आबख़ोरे बर्फ़ के 'इंशा' को भेजे आपने ।
इसके यह मानी कि लो नक्शा तुम्हारा जम गया ॥

---

१ हवा । २ ऊँटनी । ३ एक स्थान ।
४ गँवार और जङ्गली ।
५ प्याला ।

[८]

मिल गए सीने से सीने फिर यह कैसा इज़्तराब[1] ।
मर मिटे पर भी गया अपने न दिल का इज़्तराब ॥
क्यों पड़ी थलकें न आँखें आँसुओं के बोझ से ।
है दिले सद पारः[2] को सीमाब[3] का सा इज़्तराब ॥
रूस का यह हाल है याँ क़ाफ़िलः से पड़ के दूर ।
कर रही हो जिस तरह महमिल[4] में लैला इज़्तराब ॥
पूछते क्या हो कि तेरे दिल में क्या है मुझसे कह ।
और क्या याँ ख़ाक होगी जोश है या इज़्तराब ॥
दम लगा घुटने अजी मैं क्या कहूँ कल रात को ।
तुम ने आए तो किया याँ जी ने क्या क्या इज़्तराब ॥
क्या ग़ज़ब था फाँद कर दीवार आधी रात को ।
धम से मेरा कूदना और वह तुम्हारा इज़्तराब ॥
था वह धड़का पर मज़े के साथ सदक़ः उसके जी ।
फिर करे अपने नसीब अल्लाह वैसा इज़्तराब ॥
उसकी चाहत में जवानी अपनी जो थी चल बसी ।
है पर अब तक जी को जैसे का हि तैसा इज़्तराब ॥
पीर मुर्शिद का यह मिसरा हस्ब हाल 'इंशा' के है ।
मर मिटे पर भी गया अपने न दिल का इज़्तराब ॥

---

१ घबड़हट । २ सौ टुकड़ा ।
३ पारा । ४ ऊँट पर बाँधी जाने वाली अमारी ।

[९]

नहीं चाहिये शर्म इतनी बहुत ।
कि मजलिस में बन बैठिए जैसे बुत ॥
बनाते हैं हम तुमको क्या शेख़ जीउ ।
ज़रा आने दीजे तो होली की रुत ॥
बहम सब्रो शोरिस की क्योंकर बने ।
कि यह कम से कम वह बहुत से बहुत ॥
कुँवर जी भी ठाकुर के ऐसेही हैं ।
हनूमान जैसे महेशर के सुत ॥
गज़ल लिख अब 'इंशा' तू एक और भी ।
कि यह क़ाफिया है अनोखी अछुत ॥

[१०]

यों तेरी ख़ूँख्वार आँखों का है क़ातिल रंग सुर्ख़ ।
सैद[1] के लोहू से जों शाहीं[2] का होवे चंग सुर्ख़ ॥
रहनवरदाने-जुनूँ[3] की दौलते पाबोस से ।
हो गई दश्ते तलब की सैकड़ों फरसंग सुर्ख़ ॥
ख़ूँ चकाँ आँखों से गर क़तरा गिरे तो हो वहीं ।
रोंदो, नीलो, दज्लओ, बसते फ़रातो, गंग[4] सुर्ख़ ॥

---

१ शिकार । २ एक अहेरी पक्षी ।
३ प्रेमोन्मत्तता के मार्ग के पथिक गण ।
४ नदियों के नाम ।

मौसिमे होली में देखा हमने क्या है लुत्फ़ वाह ।
रंग से तेरे हुआ जब तुर्रए सर रंग सुर्ख़ ॥
फ़ायदा क्या मय से कर लेवेंगे उसके लुत्फ़ को ।
ग़ैरते चश्मो हयाओ शर्मो आरो नंग सुर्ख़ ॥
बादः नोशी शब को की थी तूने शायद ग़ैर साथ ।
है तेरा चेहरः जो कुछ, ऐ तिफ्ल ! शोख़ो संग सुर्ख़ ॥
ख़ूने आशिक़ आ चढ़ा आँखों में उस क़ातिल के आह !
कर सके यों वर्ना कब 'इंशा' ख़ुमारे भंग सुर्ख़ ॥

[११]

हल्के फुलके जो मिले दैर के रोड़े पत्थर ।
चूम औ चाट के मैं काबे के छोड़े पत्थर ॥
दफ़्न है कोहकन ग़मज़दः जिस जा ऐ चर्ख़ ।
रख दे लोहू भरे, वाँ लाके तू थोड़े पत्थर ॥
दोस्तो सन्दले साईदः से क्या होता है ।
हो रहे हैं मेरे सीने के दिदोड़े पत्थर ॥
रक्त आई न तुझे हाल पै मेरे सच है ।
हो जो पत्थर उसे क्या कोई निचोड़े पत्थर ॥
हाथ टुक मुझ से मिलाते ही यह फ़र्माने लगे ।
तुझ से पञ्जः वह करै जो कि मड़ोड़े पत्थर ॥
काँवरू देस में मत जाइयो ऐ साहबे फ़ौज ।
ज़ोरे जादू से वहाँ होते हैं थोड़े पत्थर ॥

तौसने फ़िक्र अदू अपने रह अञ्जाम के साथ ।
पहुँचे तब जब कि चलें खाने से कोड़े पत्थर ॥
घूर उन्हें हाय सनम मैंने कहा तो बोले ।
मैं तो इनसान हूँ हो तू ही निगोड़े पत्थर ॥
भटकटैया के अरे काँटे पड़ें मुट्ठी ख़ाक ।
राई औ नोन तेरे दीदों में थोड़े पत्थर ॥
वह भरी गोद दिखा बोले कि ऐ दीवानः ।
फोड़े सर अपना तो ले और भी थोड़े पत्थर ॥
साँप सी तेरी मगर जुल्फ खुली नह्र के बीच ।
चादरे आब ने टकरा के जो फोड़े पत्थर ॥
लहर ऐसीही चढ़ी मौज को जिससे कि वहीं ।
मुँह पः कफ़ जोश से ला उसने झिंझोड़े पत्थर ॥
मारफत की वह ग़जल अब तो सुना दे 'इंशा' ।
जिसको सुन सूफ़ियों ने सर से हों फोड़े पत्थर ॥११॥

[१२]

रातों को न निकला करो दरवाज़ः से बहार ।
शोखी में धरो पाँव न अन्दाजः से बाहर ॥
जर्राह न रख पुम्बओ[१] मरहम कि यहाँ आग ।
निकले है हर एक ज़ख्म तरो ताज़ा से बाहर ॥

१ रूई ।

ले कैस मुबारक हो कि लैला निकल आई।
पर्दे को उठा महमिले जम्माज़ः[1] से बाहर ॥
लेते वह जम्हाई हैं तो गोया कि नज़ाकत।
टपकी पड़े है शोखिए ख़म्मियाज़ः[2] से बाहर ॥
गो ग़ैर ने आवाजः कसा उसकी गली में।
परमैं कोई निकलू हूँ इस आवाजः से बाहर ॥
नारङ्गी के छिलके थे मगर इत्र में डूबे।
बू बास यह थी अदविअए ग़ाज़ः[3] से बाहर ॥
रहती है सदा ख्वाहिशे अहबाब से 'इंशा।
अजजा मेरे दीवान के शीराजः से बाहर ॥१२॥

[१३]

माँगा जो मैने बोसः उनसे चमन के अन्दर।
बोले कि याँ नहीं चल मच्छीभवन के अन्दर ॥
शोले भड़क रहे हैं याँ अपने तन के अन्दर।
दूँ[4] लग रही हो जैसे गर्मी से बन के अन्दर ॥
है ख़ाल यों तुम्हारे चाहे जक़न के अन्दर।
जिस रूप हो कन्हैया आबे जमुन के अन्दर ॥

---

१ शीघ्रगामी ऊँट।

२ अँगड़ाई। ३ उबटन।

४ अग्नि।

जो चाहो तुम सो कह लो चुप चाप हैं हम ऐसे ।
गोया ज़ुबाँ नहीं है अपने दहन के अन्दर ॥
क्या बात की जगह है छिपने की झाड़ नीचे ।
मेहदी की टट्टियों की ओझल चमन के अन्दर ॥
गुल से ज़ियादः नाज़ुक जो दिलबराने रमना ।
हैं बेकली में शबनम के पैरहन के अन्दर ॥
है मुझ को यह तअज्जुब सोवेंगे पाँव फैला ।
यह रंग गोरे गोरे क्योंकर कफ़न के अंदर ॥
काफ़िर समा रहा है सारङ्ग का यह लहरा ।
तबले की तालो सुम की हर हर बरन के अंदर ॥
सौ चिलमनों के बाहर मुतरिब जो गा रहा है ।
आती है किस मज़े से आवाज़ छन के अंदर ॥
ग़म ने तेरे चिढ़ाया ऐ माहे-मिस्र[1] ख़ूबी ।
याक़ूब वार हमको बैतुल हज़न[2] के अंदर ॥
मुँह चंग बीच तेरे मुतरिब य तार यों है ।
काँटा लगा हो जैसे काली के फन के अंदर ॥
बल बे तेरा अकड़ना ले हाथ में तपंचः ।
और जाके बैठना यों मजलिस में तन के अंदर ॥

---

१ यूसुफ़ । २ कष्ट का घर ।

सूझी तो दूर की थी कहता नहीं व लेकिन ।
इतना तो मैं कहूँगा इस अंजुमन के अंदर ॥
वह चीज़ नाम जिसका लेना नहीं मुनासिब ।
सो तेरे रूखे सूखे इस बाँकपन के अंदर ॥
यों बोलते कहे है सुनते हो 'मीर इंशा' ।
हैं तुर्फ़ा हम मुसाफ़िर अपने वतन के अंदर ॥१३॥

[१४]

ऐ दिल समझ के उसके तू ज़ुल्फ़े रसा को छेड़ ।
कंबख़्त क्या करे है न काफ़िर बला को छेड़ ॥
ग़ुंचों को रौंद गुल को मसल औ सबा को छेड़ ।
लेकिन न उसके उक़दए बन्दे क़बा को छेड़ ॥
मैं फ़ुन्दुक़ीं[1] जो उनकी बनाने लगा तो वह ।
बोले कि चल परे हो न मेरी हिना को छेड़ ॥
क्या गा रहा है अपनी उपज ऐ हुदासरां[2] ।
जिससे कि क़ैस लोट हुआ उस सदा को छेड़ ॥
नालों से मेरे बहसी जो बुलबुल तो बोले आप ।
वाह ऐ उजड़ गए न मेरे आशना को छेड़ ॥

---

१ उँगलियों का सिरा जिसमें मेहदी लगी हो ।

२ वह गाना गानेवाला जो ऊँटवान ऊँट हाँकते समय गाते हैं ।

शोरीदगाने इश्क से बातों में मत उलझ ।
ऐ बेअदब परे, न गरोहे—खुदा को छेड़ ॥
ऐ हमनशीं यह मौसिमे होली है इन दिनों ।
मंजूर है जो सैर तौ उस खुशअदा को छेड़ ॥
लेकिन कुछ और सॉंग न ला सर पःअपने अब ।
नीला कसाबा बाँध के उनके ददा को छेड़ ॥
चमका न मेरे सामने ऐ मेह्व आइनः ।
कहता हूँ बात मान न अह्ले सफ़ा को छेड़ ॥
'इंशा' जो होनी हो सो हो दिल तो कहे है यों ।
ता चन्द ज़ब्त आज तू उस दिलरुबा को छेड़ ॥
ले जाके चुपके चुपके दुशाले के नीचे हाथ ।
नाखुन गड़ो के चुटकी ले अंगुश्तपा को छेड़ ॥

[१५]

बहुत गनीमत कि खुद बदौलत ने याँ जो की एक दम नेवाजिश ।
कमाल इलताफ़ो मेह्रबानी बड़ी तवज्जोह करम नेवाज़िश ॥
गुलाम बे दाम जी से फ़िद्वी मुहिब्बे सादिक़ रुजूअ हाज़िर ।
ग़ज़ब है उसपर भी मेरे हक़ में जो आप फरमावें कम नेवाज़िश॥
वही तफक्कुद[1] वही तलत्तुफ़[2] जो आप अगली तरहसे रखते ।
तो बन्दः खाना में मेरे करते भला यह क्यों दर्दो ग़म नेवाज़िश ॥

---

१ दया । २ कृपा ।

बिरहमनाने कनश्त बोले मुझे जो कल राह में मिले सब ।
कभी तो अज़ बहरे सैर कीजे बसूए बैतुल् सनम नेवाज़िश ॥
किसी के ख़त में सलाम आगे कभी जो लिखते थे वहभी छूटा।
ग़रज़ कि तुम हम को ऐसे भूले गई वह सब यक क़लम नेवाज़िश ॥
सभों से ख़लतः गुरेज़ हम से यही तो है बात अपने ढब की ।
सितम जो मख़सूस एकपर हो समझ कि है वह सितम नेवाज़िश ॥
तसद्दुक़ अपने ख़ुदा की जाऊँ कि प्यार आता है मुझको 'इंशा' ।
इधर से ऐसे गुनाह पैहम उधर से वह दम ब दम नेवाज़िश ॥

[१६]

फैले डलक से साअदे[2] नाज़ुक बदन की बेल ।
चम्पाकली से आन भिड़ नौरतन की बेल ॥
कल तुझको देखते ही लजालू की तरह से ।
इक बारगी सिमट गई इस अंजुमन की बेल ॥
यह आह पुर शरारः चले दाग़े दिल से यों ।
सूरज से जैसे फूट के निकले किरन की बेल ॥
रासो ज़नबै[3] की शक्ल यह चोटी है ऐ परी ।
फबती है उसको कहिये जो सूरज गहन की बेल ॥

---

१ मिलना । २ हाथ ।

३ आकास में तारों का झुंड जो रास अर्थात् नेवला और ज़नब अर्थात् सर्प की शक्ल का होता है ।

शादी मुबारक आके लगी गाने अन्दलीब ।
लहरा गई खुशी से हर एक इस चमन की बेल ॥
बोल उट्ठी बनकी डोमनियाँ सारी कुमारियाँ ।
साहब हमें दिलाइए दूल्हा दूल्हन की बेल ॥
'इंशा' यह नौ उरूस ग़ज़ल हाथ क्या लगे ।
गोया कि अब मँढ़े चढ़ी अपने सख़ुन की बेल ॥

[१७]

वह देखा ख्वाब क़ासिर जिससे है अपनी ज़बाँ और हम ।
कि गोया एक जा है उसमें है वह नौजवाँ और हम ॥
वह रह रह मुझसे कहता है खुदा की बातें हैं वरनः ।
भला टुक दिल में अपने गौर कर तो यह मकाँ और हम ॥
जो पूछा कैस से लैला ने जङ्गल में अकेली हो ।
तो बोले ऐ नहीं वहशत है और आहो फ़ुग़ाँ और हम ॥
अजी गडबड रही है अक्ल अपनी सब फरिश्तों से ।
पड़े फिरते हैं बाहम सैर करते कुदसियाँ और हम ॥
नशा है आलमे मस्ती है बेक़ैदी है रिंदी है[1] ।
कहाँ अब जेहदो तकवा है ख़राबाते मुग़ाँ[2] और हम ॥
नयाबत हमको रुज्वाँ की मिली मौला के सदक़े से ।
वगरनः ओहदए दरबानिए बाग़े जिनाँ और हम ॥

---

१ संयम। २ अग्नि पूजक।

अजब रङ्गीनियाँ बातों में कुल होती है ए 'इंशा' ।
बहम हो बैठते हैं जब सआदतयार खाँ और हम ॥

[१८]

कुछ निगाहें तेरी ऐसी हि हुनर से लड़ियाँ ।
कि झड़े नूरही की क़र्स क़मर से लड़ियाँ ॥
यह जो चिलमन से कोई शख्स उधर झाँके है ।
फुरतियाँ उसकी मेरे दीदए तर से लड़ियाँ ॥
जमा हूरें थीं यह किस वास्ते ऐ शबनमे रात ।
चितवनें जिनकी मेरे तारे नज़र से लड़ियाँ ॥
किस का यह व्याह था जो मोतियों के सेहरा के ।
अब तलक झड़ते हैं दामाने सहर से लड़ियाँ ॥
आहें 'इंशा' की लड़ीं शोखियों से बर्क़ के या ।
फौजें हूरों की बहम उड़ती हैं फ़र्र से उड़ियाँ ॥

[१९]

कैसे कहूँ न हम में तुम में लड़ाइयाँ हों ।
जब खिलखिला के हँस दो बाहम सफ़ाइयाँ हों ॥
क्योंकर न गुदगुदाहट हाथों में उसके उट्ठे ।
वह गोरी गोरी रानें जिसने दबाइयाँ हों ॥
जी चाहता है बोलें पर बोलते नहीं हैं ।
होवें अगर तो बाहम ऐसी रुखाइयाँ हों ॥

मुमकिन है कोई हमसे अफ़शाये राज़ होवे ।
सौ बार ठंढी साँसें गो लब तक आइयाँ हों ॥
क्योंकर जनूँ मुजस्सिम होकर न दे दिखाई ।
जब शोरिशों ने दिल की धूमें मचाइयाँ हों ॥
नाज़ो करश्मः वैसा सज धज ग़ज़ब यह जिसमें ।
और यह नमक यह गर्मी यह खुश अदाइयाँ हों ॥
चितवन में वह लगावट सुरमः की वह घुलावट ।
फिर क़हर यह सजावट यह अचपलाइयाँ हों ॥
मर जाइए न क्योंकर ऐसे पः हुये बेज़ालिम ।
जिसमें इकट्ठी इतनी बातें समाइयाँ हों ॥
पढ़ और भी ग़ज़ल एक 'इंशा' इसी तरह से ।
तब शायरों के आगे तेरी बड़ाइयाँ हों ॥

[२०]

फबन अकड़ छब निगाहो सज धज जमालो तर्ज़ो ख़िराम आठों ।
न होवें उस बुत के गर पुजारी तो क्यों हो मेले का नाम आठों ॥
ज़कन[1] ज़नख़्दाँ[2] लबो दहानो रुख़ो जबीनो[3] नमक तबस्सुम ।
सिखाती हैं उस परी को काफ़िर यह मिल के सब क़त्ले आम आठों ॥
अदाओ नाज़ो हेजाबो ग़मज़ः करश्मो शोख़ी हया तग़ाफ़ुल ।
तुम्हारे चितवन के आगे आगे यह करते हैं एहतमाम आठों ॥

१-२ ठुढ्ढी । ३ कपोल ।

झझक लगावट चमक झमकड़ा मलाल गुस्सा करम रुकावट ।
किसी की बातों पः करते हैं याँ किसी का जी है तमाम आठों ॥
शिकेबो[1] सब्रो क़रारो ताक़त निशातो[2] आरामो ऐश राहत ।
तुम्हारे उल्फ़त में खोके बैठा हूँ मैं तो अब लाकलाम आठों ॥
सरीरो चत्रो कुशूनो[3] मुल्को शिकोहो ताजो कमालो सेहत ।
मेरे सुलेमाँ को दे खुदाया यह जल्द बा एहतशाम[4] आठों ॥
न पूछ मुझसे तू सैयद 'इंशा' कि नाम आशिक के क्या हैं वहशी ।
ज़लीलो रुसवा ख़राबो ख़िस्तः ग़रीब बन्दः गुलाम आठों ॥

[२१]

देखकर एक दो जनों की रंग रलियाँ बाग़ में ।
खिलखिला के हँस पड़ीं फूलों की कलियाँ बाग़ में ॥
थक गईं लेले बलाएँ कुमरियाँ और बुलबुलें ।
तुमने दी अपनी जो मुझको मुँह की डलियाँ बाग़ में ॥
क्या हुआ जो बन्द दरवाज़ा किया ऐ बाग़बाँ ।
खिल रही हैं हर रगे गुल की तो कलियाँ बाग़ में ॥
नरगिसिस्ताँ पर जो आलम ख्वाब का सा छा गया ।
ली जम्हाई अपनी आँखें किसने मलियाँ बाग़ में ॥
हर रविश पर लग गई मुक्कैश की तारों के ढेर ।
कुछ परीज़ादें जो अपने साथ चलियाँ बाग़ में ॥

---

१ संतोष। २ आराम। ३ सेना। ४ शानो शौकत।

फल किसी ढब का न तोड़ 'इंशा' किसी को दुख न दे ।
ता दुआ तुझको करें सब फूल फलियाँ बाग़ में ॥
क्यों न हों हर गुल के जोड़े आज अफ़शाँ बाग़ में ।
मिल के होली खेलती हैं आज परियाँ बाग़ में ॥
आज शायद उर्स बुलबुल का हुआ है ऐ नसीम ।
आतिशे गुल ने किया है जो चिराग़ाँ बाग़ में ॥

[२२]

काम फर्माइये किस तर्ह से दानाई को ॥
लग गई आग है याँ सब्रो शिकेबाई को ।
इश्क़ कहता है कि यह वहशत से जुनूँ के हक़ में ।
छेड़ मत मजनुँ जली मेरे बड़े भाई को ॥
क्या ख़ुदाई है मुँडाने लगे अब ख़त को व लोग ।
देखकर ढोड़े में छिप रहते थे जो नाई को ॥
वादः करता है कि ग़ेज़ालाने हरम के आगे ।
किसने यह बात सिखाई तेरे सौदाई को ॥
गर्चे हैं आबलःपा दस्त जुनूँ के ऐ ख़िज्र ।
तौ भी तैय्यार हैं हम मरहलः पैमाई को ॥
एक बगूला जो फिरा नाक़ए लैला के गिर्द ।
याद कर रोने लगी अपने वह सहराई को ॥

मस्त जारोबकशी[1] करते हैं याँ पलकों से।
काबः कब पहुँचे है मैख़ाना की सुथराई को॥
जी में क्या आ गया 'इंशा' के यह बैठे बैठे।
कि पसंद उसने किया आलमे–तनहाई को॥

[२३]

महफ़ूज रंज क़हत से रक्खे जो ख़ल्क़ को।
लारेब[2] है वह यूसुफे कनआँ ब अयनहू॥
आलम में जिसको ऐसी सआदत अली ने दी।
मानिन्द अब्र है वह दुर अफ़शाँ बअयनहू॥
'इंशा' रहे वह ता सदो सी साल जिससे है।
हिन्दोस्ताँ मुक़ाबिल ईराँ बअयनहू॥

[२४]

ग़ैर के मोढ़े प तुम हाथ जो धर बैठ गये।
साथवालों को न पूछा कि किधर बैठ गये॥
कुछ सफ़ सद्रो नआल अपनी नहीं ख़ातिर में।
मस्त मदहोश हैं हम बैठे जिधर बैठ गए॥
आह जूँ शोला न बालीदः[3] हुये अख़गरे दिल।
कुछ चमक अपनी दिखा मिस्ले शरर[4] बैठ गये॥

---

१ झाड़ू देना। २ निश्चयतः।
३ बढ़ता हुआ। ४ चिनगारी, प्रेमांकुर।

ज़ोफ़ इस हद से हमें है कि कहीं गर आया ।
सायः वो तकियए दीवार नजर बैठ गये ॥
ताक़ते तैए मुसाफ़त नहीं अब हम तो यहाँ ।
थक के ऐ क़ाफ़िला–सालारे–सफ़र बैठ गये ॥
मैं यह ताजीम समझता हूँ सुनो, बन्दःनेवाज ।
आप उठते थे मुझे देख के पर बैठ गये ॥
अपनी मजलिस में मुझे देख के ग़ैरों से कहा ।
देखियेगा इन्हें क्या होके निडर बैठ गए ॥
उठ के दिलदार को रुख़सत तो किया पर व वहीं ।
रख के हम दस्ते तास्सुफ़[1] को बसर बैठ गए ॥
सुन के यह तेरी ग़ज़ल बज़्म में 'इंशा' शब को ।
मुस्तएद उठने पः थे अह्ले हुनर बैठ गये ॥

[२५]

तपिशे दिल ही से हम मिल के गले बैठे हैं ।
छेड़ मत शोलए गुल बस कि जले बैठे हैं ॥
आह की धूनी लगा दर पः मेरे ख़ाकनशीं ।
राख जोगी की तरह मुँह को मले बैठे हैं ॥
सर्दिओ गर्मिओ बरसात जो हो या क़िस्मत ।
तेरी दीवाल के हम सायः तले बैठे हैं ॥

---

१ शोक, अफसोस ।

पासबानों ने बहुत आके उठाया हमको ।
अपने हम दिल की बिठाई से दबे बैठे हैं ॥
आप जो चाहिये फरमाइये हम तो चुपके ।
क्या करें खैर जो कुछ बस न चले बैठे हैं ॥
दरो दौलत से तेरे बन्दए दरगाह भी आज ।
टालने से तो किसी के न टले बैठे हैं ॥
सैर गुलशन की न तकलीफ़ हमें दे 'इंशा' ।
कुंज उजलत[1] ही में हम अपने भले बैठे हैं ॥

[२७]

पए ताज़ीम अश्क इस तरह आहे सर्द उठती है ।
कि जैसे क़तरः अफ़शानी से बूए गर्द उठती है ॥
गिरह हसरत की हर तारे नफ़स में पड़ गई जिससे ।
य कैसी हूक हरदम ऐ दिले पुर दर्द उठती है ॥
सियहबख्तों को साथ अपने उठाया दाग़े ग़म ने यों ॥
लिपट कर मुह से कागज के जैसे फ़र्द उठती है ॥
हुई उम्मेद हासिल शुक्र जाये गिरियः है लेकिन ।
कि रुखसत के लिए अब यासे ग़म पुर दर्द उठती है ॥
जहूरे महदिये दीं का सुनेंगे आज कल मुजदः ।
खुदा के फज्ल से अब यह सफे नामर्द उठती है ॥

---

१ एकांतवास ।

नशे में ली है उठते ही निकल पर्दः से मीना के ।
उरूसे[1] शर्म को गर दुख्ते रज बेपर्द उठती है ॥
खमोश ऐ दिल सदाये दिलखराशे नग्मए बुलबुल ।
बिगुल बाँगे शिगुफ्तः गुन्चहाए दर्द उठती है ॥
तपिश खाकसतरे उश्शाक़ से जूँ शोलए आतिश ।
ज़मिस्ताँ[2] में बहंगामे शर्दीदुलबर्द[3] उठती है ॥
मसीहा का मगर ऐजाज़ है पासों में चौपड़ के ।
कि मरजातेही हो फिर जिन्दः हर एक नर्द उठती है ॥
भला टुक वादिये मजनूँ में जा बस आज तक बाँसे ।
सदाये नारः होती है बियाबाँ गर्द उठती है ॥
हनोज़ उस दश्ते गुरबत बीच उसकी खाक आँधी हो ।
बरंगे सुर्खो सब्जो नीलगूनो जर्द उठती है ॥

[२८]

मुझसे फरमाने लगे अब क़द्र जानी आपकी ।
बन्दः किस काबिल है साहब मेहरबानी आपकी ॥
यों को देखा भी नहीं और इख्तलातें औरों से था ।
हो गई मालूम इसमें क़द्रदानी आप की ॥

---

१ दूल्हा दुलहिन । २ जाड़े का ऋतु ।
३ अत्यंत ठंढक । ४ मिलना ।

सुनते ही अहवाल मेरा हँसके यों बोला कि बस ।
खुश नहीं आती है यह मुझको कहानी आप की ॥
अब जहाँ चाहो सिधारो कुछ नहीं है ग़म यहाँ ।
दाग़े दिल रखता हूँ सीनः में निशानी आप की ॥
'सैयद इंशा साहब' आता रहम है मुझको कि हाय ।
कटती है किस दर्दो ग़म में नौजवानी आप की ॥ २८ ॥

[२९]

गाली सही अदा सही चीने-जबीं सही ।
यह सब सही पर एक नहीं की नहीं सही ॥
मरना मेरा जो चाहे तो लगजा गले से टुक ।
अब का भी दम यह मेरा दमे वापिसीं सही ॥
गर नाज़नीं के कहने से माना बुराहो कुछ ।
मेरी तरफ तो देखिये मैं नाज़नीं सही ॥
आगे बढ़े जो जाते हो क्यों कौन है यहाँ ।
जो बात हमको कहनी हो तुमसे नहीं सही ॥
मंजूर दोस्ती जो तुम्हें है हर एक से ।
अच्छा तो क्या मुजायक़ः 'इंशा' से कीं सही ॥२९॥

[३०]

जिस पः एक लौंग वह पढ़कर बुते काहिन[1] मारे ।
भूत हो रात लगे जिन हो उसी दिन मारे ॥

१ जादूगर ।

मैं तो छेड़ा न छुआ हाथ लगाया भी नहीं ।
तौबः दहाड़ आप मचाते हैं अबस बिन मारे ॥
पाँज़्दहं[1] साल की एक आफ़ते-जाँ है ज़ालिम ।
जान आशिक़ की भला क्यों न तेरा सिन मारे ॥
इस क़दर हठ न कर ऐ तिफ्ल सरश्क ओ बदबख़्त ।
पाँव शोखी में न धर हट तुझे डाइन मारे ॥
मुफ़लिसा बेग जो आशिक हैं कहां पावें ज़र ।
ज़र हो उस पास जो पारे की रसायन मारे ॥
औरभी क़ाफ़ियों में पढ़ ग़ज़ल 'इंशा' वह परी ।
जिसके बस पढ़तेही चिन्घाड़ बड़ा जिन मारे ॥३०॥

[३१]

साँवले पन पर ग़ज़ब है धज बसंती शाल की ।
जी में है कह बैठिये अब जै कन्हैयालाल की ॥
ज़िन्दगी इस तार चंगे आह ने जंजाल की ।
उड़ रही है एक हवा पर पोटली सी राल की ॥
बिन लगावट रह नहीं सकता हमारा दिल कभी ।
क्या तेरी ख़ू पड़ गई कमबख़्त बैतुल माल की ॥
हैं वह जोगी नेहगर अवधूत जिनके सामने ।
बालका देवे जुनूँ वहशत परी है बालकी ॥

---

[1] पंद्रह ।

ऐसी घोड़ी पर चढ़ा गर यह नहीं फबती तुझे ।
गर्चे झालरदार है फिर पालगी की पालकी ॥
तू भी है एक शाहेजादः चाहिए तेरे लिये ।
मोरछल दो हों हुमा के और मग़रिक नालकी ॥
क्यों न अंगारे उछाले फिर वह 'इंशा' रात को ।
है हमारी आह शागिर्द अग्गिया बैताल की ॥३१॥

[३२]

टुक एक ऐ नसीम सम्हालले कि बहार मस्ते शराब है ।
व जो हुस्न आलमे नशा है उसे अबकी ऐन शबाब है ॥
यह घटायें छाईं जो कालियां जो हरी भरी हुईं डालियाँ ।
उभर आईं फूलों की लालियां तो बजाय आब शहाब[1] है ॥
यह दोरोजः नश्व नुमा को तू न समझ कि नक्शे पुर आब है ।
यह सुराब[2] है, यह हुबाब है फ़क़त एक क़िस्सए ख़्वाब है ॥
अर्क़े बहार शराब है वह ही आज छिड़केंगे आपपर ।
नतो बेदमुश्क है इसघड़ी न तो केवड़ा न गुलाब है ॥
उन्हें कहने सुनने से बैर है जो खुद आयें सो तो बख़ैर है ।
यह ग़रज कि जोर है सैर है न सवाल है न जवाब है ॥
किधर आऊँ जाऊँ करूँ सो क्या मेरा जी है नाकमें आगया ।
न तो अर्ज़ हाल की ताब है नतो सब्र ख़ानाख़राब है ॥

---

१ लाल रंग, आग की लपट । २ मृगतृष्णा ।

मुझे वहशो-तैर[1] से रश्क है कि कभी उन्हों को किसी नमत[2] ।
न सवाल है न जवाब है न एजाब है न उक़ाब[3] है ॥
मेरी बात मान सुना दिला न तो अर्जो फर्ज पः जी चला ।
कोई उनके टोके सो क्या भला कि वह आली उनकी जनाब है ॥
अरे 'इंशा' अब जो यह दौर है तेरी वजअ इन दिनों और है ।
यह भी कोई जीस्त का तौर है न शराब है न कबाब है ॥

[३२]

जी चाहता है शेख़ की पगड़ी उतारिये ।
और तान कर चटाख़ से एक धौल मारिये ॥
सोतों को भला पिछले पहर क्यों पुकारिए ।
दरवाजः खुलने का नहीं घर को सिधारिये ॥
क्या सरव अकड़ रहा है खड़ा जूएबार[4] पर ।
टुक आप भी तो इस घड़ी सीनः उभारिये ॥
यह कारखाना देखिये टुक आप ध्यान से ।
बस सुन्न खींच जाइए याँ दम न मारिये ॥
नासिह ने मेरे हक़ में कहा अह्ले बज्म से ।
बिगड़े हुये को आह कहाँ तकः सँवारिये ॥

---

१ पशु और पक्षी । २ चाल, दस्तूर ।
३ दुःख । ४ जहाँ नहरें बहुत हों ।

'इंशा' खुदा के फ़ज़्ल पः रखिये निगाह और ।
दिन हँस के काट डालिये हिम्मत न हारिये ॥

[३४]

मुतलक़ मुतवज्जः न हूँ हर चन्द गुज़र जायें ।
सद क़ाफ़िलये लैलिओ मजनूँ मेरे आगे ॥
तुफ भी न करूँ लावह की गो गाव ज़मीं पर ।
लावे कोई गंजीनए क़ारूँ मेरे आगे ॥
है दौरए गेती जो बना यह कर दे शक्र ।
बेशुबहो शक धेले के चूँ चूँ मेरे आगे ॥
बेताबिए दिल देख के सीमाब सी फिर जाये ।
कफ़ लावे अगर मूख़बिर जैहूँ मेरे आगे ॥
है मरहिलए ख़ुम ग़दीर आँखों में छाया ।
क्यों छिप न रहे ख़ुम में फ़लातूँ मेरे आगे ॥
मैं शाहे ख़ुरासाँ के ग़ुलामों में हूँ 'इंशा' ।
मसरूफ़ रहे मूसओ हारूँ मेरे आगे[1] ॥

[३५]

मिल गये पर हेजाब बाकी है ।
फ़िक्र नाज़ो एताब बाक़ी है ॥

---

१ इस ग़ज़ल के अन्य शेर पृ०६-११ पर दिए जा चुके हैं।

बात सब ठीक ठाक है पः अभी ।
कुछ सवालो जवाब बाक़ी है ॥
गर्चे माजून खा चुके लेकिन ।
दौरे जामें शराब बाकी है ॥
झूठे वादे से उनके यहां अब तक ।
शिकवए बेहिसाब बाक़ी है ॥
गाह कहते हैं शाम हुई अभ्भी ।
ज़र्रए आफ़ताब बाक़ी है ॥
फिर कभी यह कि अब्र में कुछ कुछ ।
परतवे माहताब बाक़ी है ॥
है कभी यह कि तुझ पः छिड़केंगें ।
जो लगन में शहाब बाकी है ॥
और भड़के है इशतियाक़ की आग ।
अब किसे सब्रो ताब बाक़ी है ॥
उड़ गई नींद आँख से किसके ।
लज्ज़ते ख़ुर्दो ख़्वाब बाक़ी है ॥
है ख़ुशी सब तरह की नाहक का ।
ख़तरए इनक़लाब बाक़ी है ॥
है वह दिल की धड़क सो जों की तों ।
जी पर उसका एज़ाब बाक़ी है ॥

जो भरा शीशः था हुआ ख़ाली ।
पर्दः बूए गुलाब बाक़ी है ॥
अपनी उम्मीद थी सो बर आई ।
यास शक्के सुराब बाक़ी है ॥
है यही डौल जब तक आँखों में ।
दम बसाने हुबाब बाक़ी है ॥
मिस्ल फ़र्मूदए हुज़ूर 'इंशा' ।
फिर वही इज़्तराब बाक़ी है ॥

[३६]

कोई चाहत में किसी शख़्स के बदनाम हो नौज ।[1]
ऐ दवा जान वह कम्बख़्त बड़ा काम हो नौज ॥
मरदुवा मुझसे कहे है चलो आराम करें ।
जिसको आराम वह समझे वह आराम हो नौज ॥
आ गया तेरी रज़ाई में पसीना मुझको ।
गर्म ऐसा भी निगोड़ा कोई हम्माम हो नौज ॥
दिन धराही रहे जी तो बचे ऐ 'इंशा' ।
कलमुही काली बला हाय वह फिर शाम हो नौज ॥

---

१. ३६–३९ तक के ग़ज़ल दीवाने-रेख़्ती से संकलित किए गए है।

[३७]

बाजो के बास में जो रचे एक जने की बास ।
तो ठीक ठीक हो गई दूल्हन पने की पास ॥
हैं याँ घरे जो फूल फफोलों के उनको सूँघ ।
सदक़ा गई थी यह तेरे सूँघने की बास ॥
बटना निगोड़ा कहना भी कुछ लफ्ज़ है भला ।
हम तो यही कहेंगे अजी उबटने की बास ॥
चाहत की आग से यह भुना दिल कि ऐ दवा ।
गोदी में अपने भर गई भूने चने की बास ॥
उस पदमिनी पः आँखों के भौरों की भीड़ है ।
होगी किसी परी में न इस तनतने की बास ॥
फूलों की बू भी फूटै अब 'इंशा' जो तू मना ।
उनमें समा रही थी तेरे रूठने की बास ॥

[३८]

चढ़ के कोठे धूप में तुम तो उड़ाती हो पतंग ।
ऐ दोगाना चाँदनी में याँ उड़ा जाता है रंग ॥
पिघली चांदी की तरह से है थलकती चांदनी ।
आज कोठे पर लगा दो मेरे सोने का पलंग ॥
बात आतू जी की है हरगिज नहीं कुछ मानती ।
सच तो यह है बेगमा तूने बुरे सीखे हैं ढंग ॥

क्या भली लगती है अठखेली किसी की वाह वा ।
और वह नामे खुदा उठती जवानी की उमंग ।
जान सद्के उस परी के जिनने 'इंशा' से कहा ।
अब तेरे हाथों से यह बंदी बहुत आई है तंग ॥
बेगमा जिस तरह होती है जवानी की उमंग ।
तू उसी ढब से समझ दिल्ली के पानी की उमंग ॥

[३९]

जो हमको चाहे उसका खुदा नित भला करे ।
दूधों नहाये और वह पूतों फला करे ॥
रूठे हुये को किस लिये जाकर मनाइये ।
मिन्नत किसी निगोड़े की अपनी बला करे ॥
झुलसाए उसके मुँह को जो चाहत का नाम ले ।
इस दिल की आँच में कोई कब तक जला करे ॥
कुछ दौड़ तुझसे भी न हुई चल चखे दवा ।
वह उड़ गए जो कोई तेरा अरतिला करे ॥
अफसोस उस ख्याल में जो जी में रच गया ।
दोनों यह हाथ कोई कहाँ तक मला करे ॥
दाई के दुश्मनों को निकाले मुए असील ।
कुछ जाके बद्दुआ कहीं कुलकुला करे ॥
आवाज बुझ रही जो दोगाना की आज है ।
'इंशा' से कोई कहदे अब इसका गिला करे ॥

उदैभान-चरित या रानी केतकी की कहानी

यह वह कहानी है कि जिसमें हिन्दी छुट ।
और न किसी बोली का मेल है न पुट ॥

सिर झुका कर नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनाने वाले के सामने जिसने हम सब को बनाया और बात की बात में वह कर दिखाया कि जिसका भेद किसी ने न पाया । आतियाँ जातियाँ जो साँसे हैं । उसके बिन ध्यान यह सब फाँसे हैं । यह कल का पुतला जो अपने उस खेलाड़ी की सुध रखे तो खटाई में क्यों पड़े और कड़ुआ कसैला क्यों हो उस फल की मिठाई चक्खे जो बड़ों से बड़े अगलों ने चक्खी है ।

दोहरा

देखने को दो आँखें दीं और सुनने को दो कान ।
नाक भी सब में ऊँची करदी मरतों को जी दान ॥[1]

---

१ कलकत्ते तथा लखनऊ के संस्करण में दोहरे के स्थान पर गद्य में इस प्रकार दिया है-देखने का तो आँखें दी और

मिट्टी के बासन को इतनी सकत कहाँ जो अपने कुम्हार के करतब कुछ ताड़ सके। सच है जो बनाया हुआ हो सो अपने बनानेवाले को क्या सराहे और क्या कहै, यों जिसका जी चाहे पड़ा बके। सिर से लगा पाँव तक जितने रोंगटे हैं, जो सबके सब बोल उठें और सराहा करें और उतने बरसों उसी ध्यान में रहें जितनी सारी नदियों में रेत और फूल फलियाँ खेत में हैं तौ भी कुछ न हो सके, कराहा करें। इस सिर झुकाने के साथही दिन रात जपता हूँ उस अपने दाता के भेजे हुए प्यारे को, जिसके लिए यों कहा है 'जो तू न होता तो मैं कुछ न बनाता' और उसका चचेरा भाई जिसका ब्याह उसके घर हुआ उसकी सूरत मुझे लगी रहती है। मैं फूला अपने आप में नहीं समाता और जितने उनके लड़के बाले हैं उन्हीं की मेरे जी में चाह है और कोई कुछ हो मुझे नहीं भाता। मुझको उस घराने छुट किसी चोर ठग से क्या पड़ी, जीते और मरते उन्हीं सभों का आसरा और उनके घराने का रखता हूँ तीसों घड़ी।[२]

सुन्ने को कान दिये नाक भी ऊँची सब में कर दी मरतों को जी दान दिये।

१ पाठा० बता।

२ इस सिर झुकाने...तीसों घड़ी-इतना अंश कलकत्ते वाले संस्करण में नहीं है। इसके बाद की हेडिंग भा नहीं है

[डौल डाल एक अनोखी बात का]

एक दिन बैठे बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो। अपने मिलने वालों में से एक कोई बड़े पढ़े लिखे, पुराने, धुराने, डांग, बूढ़े घाग यह खटराग लाए। सिर हिला कर, मुँह थुथा कर, नाक भी चढ़ाकर, आँखें फिरा कर लगे कहने 'यह बात होते देखाई नहीं देती। हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो। बस जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते चालते हैं ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छाँह किसी की न हो, यह नहीं होने का'। मैंने उनकी ठण्डी साँस की फाँस का टहोका खाकर, झुँझलाकर कहा 'मैं कुछ ऐसा अनोखा बढ़ बोला नहीं जो राई को परबत कर दिखाऊँ और झूठ सच बोलकर उँगुलियाँ नचाऊँ और बेसिर बे ठिकाने की उलझी सुलझी बातें सुझाऊँ। जो मुझसे न हो सकता तो यह बात मुँह से क्यों निकालता, जिस ढब से होता इस बखेड़े को टालता'।

और उसके आगे इतना अधिक है—अब यहाँ से लिखनेवाला यों लिखता है कि।

इस कहानी का कहने वाला यहाँ आप को जताता है और जैसा कुछ उसे लोग पुकारते हैं कह सुनाता है। दहना हाथ मुँह पर फेर कर आप को जताता हूँ जो मेरे दाता ने चाहा तो वह ताव भाव और राव चाव और कूद फाँद लपट झपट दिखाऊँ जो देखते ही आपके ध्यान का घोड़ा जो बिजली से भी बहुत चञ्चल अचपलाहट में है हिरन के रूप में अपनी चौकड़ी भूल जाय।

टुक घोड़े पर चढ़ के अपने आता हूँ मैं।
करतब जो कुछ है कर दिखाता हूँ मैं॥
उस चाहने वाले ने जो चाहा तो अभी।
कहता जो कुछ हूँ कर दिखाता हूँ मैं॥

अब आप कान रख के, आँखें मिला के, सन्मुख हो के टुक इधर देखिए, किस ढब से बढ़ चलता हूँ और अपने फूल को पंखड़ी जैसे होठों से किस किस रूप के फूल उगलता हूँ।

[कहानी के जोबन का उभार और बोल चाल की दूल्हन का सिंगार]

किसी देस में किसी राजा के घर एक बेटा था। उसे उसके माँ बाप और सब घर के लोग कुँवर उदैभान करके पुकारते थे। सचमुच उसके जोबन की जोत में सूरज की एक सोत आ मिली थी। उसका अच्छापन और भला लगना

कुछ ऐसा न था जो किसी के लिखने और कहने में आ सके। पन्द्रह बरस भरके उनने सोलहवें में पाँव रक्खा था। कुछ यों ही सी उसकी मसें भीनती चली थीं। अकड़ तकड़ उसमें बहुत सारी[1] थीं। किसी को कुछ न समझता था पर किसी बात के सोच का घर घाट न पाया था और चाह की नदी का पाट उनने देखा न था। एक दिन हरियाली देखने को अपने घोड़े पर चढ़ के उसे अठखेल और अल्हड़पन के साथ देखता भालता चला जाता था। इतने में जो एक हिरनी उसके सामने आई तो उसका जी लोट पोट हुआ। उस हिरनी के पीछे सबको छोड़ छाड़ कर घोड़ा फेंका। भला कोई घोड़ा उसको पा सकता था? जब सूरज छिप गया और हिरनी आँखों से ओझल हुई तब तो कुँवर उदैभान भूखा प्यासा उनींदा, जँभाइयाँ और अँगड़ाइयाँ लेता हक्का बक्का होके आसरा लगा ढूँढने। इतने में अमरइयाँ ध्यान चढ़ीं उधर चल निकला तो क्या देखता है जो चालीस पचास रण्डिया एक से एक जोबन में अगली झूला डाले पड़ी झूल रही हैं और सावन गातियाँ हैं। ज्यों ही उन्होंने उसको देखा-तू कौन? तू कौन? की चिंघाड़ सी पड़ गई। उन सभों में एक के साथ उसकी आँख लग गई।

---

१ पाठा० समा रही।

दोहरा

कोई कहती थी यह उचक्का है।
कोई कहती थी एक पक्का है॥

वही झूलने वाली लाल जोड़ा पहने हुए जिसको सब रानी केतकी कहती थीं उसके भी जी में उसकी चाह ने घर किया पर कहने सुनने को बहुत सी नाह नूह की और कहा 'इस लग चलने को भला क्या कहते हैं। हक न धक जो तुम झट से टपक पड़े यह न जाना जो यहाँ रण्डियाँ अपने झूल रही हैं, अजी तुम जो इस रूप के साथ बेधड़क चले आए हो! ठण्डे ठण्डे चले जाओ'। तब कुँवर ने मसोस के मलौला खा के कहा 'इतनी रुखाइयां न दीजिये। मैं सारे दिन का थका हुआ एक पेड़ की छाँह में ओस का बचाव करके पड़ रहूँगा। बड़े तड़के धुँधलके में उठ कर जिधर को मुँह पड़ेगा चला जाऊँगा। कुछ किसी का लेता देता नहीं। एक हिरनी के पीछे सब लोगों को छोड़ छाड़ कर घोड़ा फेंका था—कोई घोड़ा उसको पा सकता था? जब तलक उजाला रहा उसीके ध्यान में था। जब अँधेरा छा गया और जी बहुत घबरा गया इन अमरइयों का आसरा ढूँढकर यहाँ चला आया हूँ। कुछ रोक टोक तो इतनी न थी जो माथा ठनक जाता और रुक रहता। सर उठाए हाँपता हुआ चला

आया। क्या जानता था यहाँ पदमिनियाँ पड़ी झूलती पेगैं चढ़ा रही हैं पर यों बदी थी बरसों मैं भी झूला करूँगा'।

यह बात सुन कर वह जो लाल जोड़े वाली सब की सिर धरी थी उनने कहा 'हाँ जी, बोलियाँ ठोलियाँ न मारो और इनको कहदो जहाँ जी चाहे अपने पड़ रहें और जो कुछ खाने पीने को माँगे सो इन्हें पहुँचा दो। घर आए को आज तक किसी ने मार नहीं डाला। इनके मुँह का डौल, गाल तमतमाए, और होंठ पपड़ाए, और घोड़े का हाँपना, और जी का काँपना और ठण्डी साँसें भरना और निढ़ाल गिरे पड़ना इनको सच्चा करता है। बात बनाई हुई और सचौटी की कोई छिपती नहीं, पर हमारे और इनके बीच कुछ ओट कपड़े लत्ते की करदो'। इतना आसरा पाके सबसे परे जो कोने में पाँच सात पौदे थे उनकी छाँव में कुँवर उदैभान ने अपना बिछौना किया और कुछ सिरहाने धर कर चाहता था कि सो रहें पर नींद कोई चाहत की लगावट में आती थी? पड़ा पड़ा अपने जी से बातें कर रहा था। जब रात साँय साँय बोलने लगी और साथवालियाँ सब सो रहीं रानी केतकी ने अपनी सहेली मदनबान को जगा कर यों कहा 'अरी ओ तूने कुछ सुना है। मेरा जी उस पर आ गया है। और किसी डौल से नहीं थम सकता। तू सब मेरे भेदों को जानती है। अब जो होनी हो सो हो। सिर

रहता रहे जाता जाय मैं उसके पास जाती हूँ। तू मेरे साथ चल, पर तेरे पाँवों पड़ती हूँ कोई सुनने न पाए। अरी यह मेरा जोड़ा मेरे और उसके बनानेवाले ने मिला दिया। मैं इसी जी में इन अमरइयों में आई थी।' रानी केतकी मदन बान का हाथ पकड़े हुए वहाँ आन पहुँची ही जहाँ कुँवर उदैभान लेटे हुए कुछ कुछ सोच में बड़ बड़ा रहे थे। मदन बान आगे बढ़ के कहने लगी 'तुम्हें अकेला जानकर रानी जी आप आई हैं'। कुँवर उदैभान यह सुनकर उठ बैठे और यह कहा 'क्यों न हो जी को जी से मिलाप है'। कुँवर और रानी दोनों चुपचाप बैठे पर मदनबान दोनों को गुदगुदा रही थी। होते होते रानी का यह पता खुला कि राजा जगत परकास की बेटी हैं और उनकी मां रानी कामलता कहलाती हैं। 'उनको उनके मां बाप ने कह दिया है एक महीने पीछे अमरइयों में जा कर झूल आया करो। आज वही दिन था सो तुमसे मुठभेड़ हो गयी। बहुत महाराजों के कुँवरों से बातें आईं पर किसी पर इनका ध्यान न चढ़ा। तुम्हारे धन भाग जो तुम्हारे पास सबसे छुप के मैं जो उनके लड़कपन की गोइयाँ हूँ मुझे अपने साथ लेके आई हैं। अब तुम अपनी बीती कहानी कहो तुम किस देस के कौन हो।' उन्होंने कहा 'मेरा बाप राजा सूरजभान और मां रानी लछमीबास हैं। आपस में जो गठ जोड़ हो जाय तो कुछ अनोखी

अचरज और अचम्भे की बात नहीं। योंही आगे से होता चला आया है। जैसा मुँह वैसा थप्पड़ जोड़ तोड़ टटोल लेते हैं। दोनों महाराजों को यह चित चाही बात अच्छी लगेगी पर हम तुम दोनों के जी का गाठजोड़ा चाहिए।' इसी में मदनबान बोल उठी 'सो तो हुआ अपनी अपनी अंगूठियाँ हेरफेर कर लो और आपस में लिखौती भी लिख दो फिर कुछ हिचिर मिचिर न रहे।' कुँवर उदैभान ने अपनी अंगूठी रानी केतकी को पहना दी, और रानी ने भी अपनी अंगूठी कुँवर की उंगली में डाल दी और एक धीमी से चुटकी भी ले ली। इस में मदन बान बोली 'जो सच पूछो तो इतनी भी बहुत हुई मेरे सर चोट है इतना बढ़ चलना अच्छा नहीं अब उठ चलो और इनको सोने दो और रोएँ तो पड़े रोने दो बात चीत तो ठीक हो चुकी।' पिछले पहर से रानी तो अपनी सहेलिओं को लेके जिधर से आई थी उधर को चली गयी और कुँवर उदैभान अपने घोड़े को पीठ लगा कर अपने लोगों से मिलके अपने घर पहुँचे।

पर कुँवर जी का रूप क्या कहूँ कुछ कहने में नहीं आता। न खाना न पीना न मग चलना न किसी से कुछ कहना न सुनना जिस ध्यान में थे उसी में गुथे रहना और घड़ी घड़ी कुछ सोच कर सिर धुनना। होते होते लोगों में इस बात की चरचा फैल गई। किसी किसी ने महाराज और महारानी से

कहा 'कुछ दाल में काला है। वह कुँवर उदैभान जिससे तुम्हारे घर का उजाला है इन दिनों में कुछ उसके बुरे तेवर और बेडौल आँखे दिखाई देती हैं। घर से बाहर पाँव नहीं धरता। घरवालियाँ जो किसी डौल से बहलातियाँ हैं तो और कुछ नहीं करता ठँढी ठँढी साँसे भरता है और बहुत किसी ने छेड़ा तो छपरखट पर जाके अपना मुँह लपेट के आठ आठ आँसू पड़ा रोता है।' यह सुनते ही कुँवर उदैभान के माँ बाप दोनों दौड़ आए, गले लगाया, मुँह चूम पांव पर बेटे के गिर पड़े हाथ जोड़े और कहा 'जो अपने जी की बात है सो कहते क्यों नहीं क्या दुखड़ा है जो पड़े पड़े कराहते हो राज पाट जिसको चाहो दे डालो कहो तो तुम क्या चाहते हो, तुम्हारा जी क्यों नहीं लगता ? भला वह क्या है जो हो नहीं सकता मुँह से बोलो जी खोलो। जो कुछ कहने से सोच करते हो अभी लिख भेजो। जो कुछ लिखोगे ज्यों के त्यों करने में आयेगी। जो तुम कहो कुँए में गिर पड़ो तो हम दोनों अभी गिर पड़ते हैं, कहो सिर काट डालो तो सिर अपने अभी काट डालते हैं।' कुँवर उदैभान जो बोलते ही न थे लिख भेजने का आसरा पाकर इतना बोले 'अच्छा आप सिधारिए मैं लिख भेजता हूँ पर मेरे उस लिखे को मेरे मुँह पर किसी ढब से न लाना इसी लिए मैं मारे लाज के मुख पाट होके पड़ा था और आप से कुछ न कहता था।' यह

सुनकर दोनों महाराज और महारानी अपने अपने स्थान को सिधारे तब कुँवर ने यह लिख भेजा । 'अब जो मेरा जी होंठो[1] पर आगया और किसी डौल न रहा गया और आपने मुझे सौ सौ रूप से खोला और बहुत सा टटोला तब तो लाज छोड़ कर के हाथ जोड़ के मुँह को फाड़ के घिघिया के यह लिखता हूँ ।

दोहरा

चाह के हाथों किसी को सुख नहीं ।
है भला वह कौन जिसको दुख नहीं[2] ॥

उस दिन जो मैं हरियाली देखने को गया था । एक हिरनी मेरे सामने कनौतियाँ उठाए आगई उसके पीछे मैंने घोड़ा बग छुट फेंका । जब तक उजाला रहा उसके धुन में बहका किया जब सूरज डूबा मेरा जी ऊबा सुहानी सी अमरइयाँ ताड़ के मैं उनमें गया तो उन अमरइयों का पत्ता पत्ता मेरे जी का गाहक हुआ । वहाँ का यह सौहिला है, कुछ रंडियाँ झूला डाले झूल रही थीं । उसकी सरधरी कोई रानी केतकी महाराज जगतपरकास की बेटी हैं । उन्होंने यह अँगूठी अपनी मुझे दी और मेरी अँगूठी उन्होंने लेली और लिखौट भी लिख दी सो यह अँगूठी उनकी लिखौट समेत

---

१ पाठा० 'नाक' और 'नथनों' दोनों है ।
२ कई प्रति में इसे गद्य में लिखा है ।

मेरे लिखे हुए के साथ पहुँचती है। अब आप पढ़ लीजिए जिसमें बेटे का जी रह जाय सो कीजिए।' महाराज और महारानीं ने अपने बेटे के लिखे हुए पर सोने के पानी से यों लिखा। 'हम दोनों ने इस अँगूठी और लिखौट को अपनी आँखों से मला अब तुम इतने कुछ कुढ़ो पचो मत। जो रानी केतकी के मां बाप तुम्हारी बात मानते हैं तो हमारे समधी और समधिन हैं और दोनों राज एक हो जाएँगे और जो कुछ नाह नूह ठहरेगी तो जिस डौल से बन आवेगा ढाल तलवार के बल तुम्हारी दुल्हन हम तुमसे मिला देंगे। आज से उदास मत रहा करो खेलो कूदो बोलो चालो आनंदें करो। अच्छी घड़ी सुभ मुहूरत सोच के तुम्हारी ससुराल में किसी बाम्हन को भेजते हैं जो बात चित चाही ठीक कर लावे।' और सुभ घड़ी सुभ मुहूरत देख के रानी केतकी के मां बाप के पास भेजा।

बाम्हन जो सुभ सुहूरत देखकर हड़बड़ी से गया था उस पर बुरी घड़ी पड़ी। सुनतेही रानी केतकी के मां बाप ने कहा 'हमारे उनके नाता नहीं होने का। उनके बाप दादे हमारे बाप दादे के आगे सदा हाथ जोड़ कर बातें किया करते थे और टुक जो तेवरी चढ़ी देखते थे बहुत डरते थे। क्या हुआ जो अब वह बढ़ गए ऊँचे पर चढ़ गए। जिनके माथे हम बाँए पाँव के अँगूठे से टीका लगावें वह महाराजों का

राजा हो जावे। किसी का मुंह जो यह बात हमारे मुंह पर लावे।' बाम्हन ने जल भुन के कहा 'अगले भी बिचारे ऐसे ही कुछ हुए हैं। राजा सूरजभान भी भरी सभा में कहते थे हममें उनमें कुछ गोत का तो मेल नहीं। यह कुंवर की हठ से कुछ हमारी नहीं चलती नहीं तो ऐसी ओछी बात कब हमारे मुंह से निकलती।' यह सुनते ही उस महाराज ने बाम्हन के सिर पर फूलों की चंगोर फेंक मारी और कहा 'जो बाम्हन की हत्या का धड़का न होता तो तुझको अभी चक्की में दलवा डालता' और अपने लोगों से कहा 'इसको ले जाओ और ऊपर एक अँधेरी कोठरी में मूँद रक्खो।' जो इस बाह्मन पर बीती सो सब उदैभान के मां बाप ने सुनी। सुनते ही लड़ने को अपना ठाट बाँध भादों के दल बादल जैसे घिर आते हैं चढ़ आया। जब दोनों महाराजों में लड़ाई होने लगी रानी केतकी सावन भादों के रूप रोने लगी और दोनों के जी में यह आ गयी यह कैसी चाहत जिसमें लोह[1] बरसने लगा और अच्छी बातों को जी तरसने लगा। कुँवर ने चुपके से यह लिख भेजा 'अब मेरा कलेजा टुकड़े टुकड़े हुआ जाता है। दोनों महाराजों को आपस में लड़ने दो किसी डौल से जो हो सके तो तुम मुझे अपने पास बुला लो हम तुम दोनों मिलके किसी और देस

---

१ पाठा० लहू।

निकल चलें होनी हो सो हो सिर रहता रहे, जाता जाय ।' एक मालिन जिसको फूलकली कर सब पुकारते थे उसने उस कुँवर की चिट्ठी किसी फूल की पँखड़ी में लपेट सपेट कर रानी केतकी तक पहुँचा दी । रानी ने उस चिट्ठी को अपनी आँखों लगाया और मालिन को एक थाल मोती दिये और उस चिट्ठी की पीठ पर अपने मुँह की पीक से यह लिखा 'ऐ मेरे जी के गाहक, जो तू मुझे बोटी बोटी करके चील कौवों को दे डाले तो भी मेरी आँखों चैन और कलेजे सुख हो पर यह बात भाग चलने की अच्छी नहीं । इसमें एक बाप दादे को चिट लग जाती है और जब तक मां बाप जैसा कुछ होता चला आता है, उसी डौल से बेटा बेटी को किसी पर पटक न मारें और सर से किसी के चेपक न दें तब तक यह एक जी तो क्या जो करोर जी जाते रहे, कोई बात तो हमें रुचती नहीं' ।

यह चिट्ठी जो पीक भरी[1] कुँवर तक जा पहुँची उस पर कई एक थाल सोने के हीरे मोती पुखराज के खचा खच भरे हुए निछावर करके लुटा देता है । और जितनी उसे बेचैनी थी उससे चौगुनी पचगुनी हो जाती है और उस चिट्ठी को अपने उस गोरे दंड पर बाँध लेता है ।

---

१ पाठा० विस (विष) ।

[आना जोगी महेन्दर गिर का कैलास पहाड़ पर से और कुँवर उदैभान और उसके मां बाप का हिरनी हिरन कर डालना]

जगतपरकास अपने गुरू को, जो कैलास पहाड़ पर रहता था, लिख भेजता है 'कुछ हमारी सहाय कीजिये, महा कठिन हम पर बिपतामारों आ पड़ी है। राजा सूरजभान को अब यहाँ तक वाव बँहक ने लिया है जो उन्होंने हम से महाराजों से डौल किया है।'

[सराहना जोगी जी के स्थान का]

कैलास पहाड़ जो एक डौल चांदी का है उस पर राजा जगतपरकास का गुरु, जिसको महेन्दर गिर सब इन्दरलोक के लोग कहते थे, ध्यान ज्ञान में कोई नब्बे लाख अतीतों के साथ ठाकुर के भजन में दिन रात लगा रहता था। सोना रूपा ताँबे राँगे का बनाना तो क्या और गुटका मुँह से लेकर उड़ना परे रहे उसको और बातें इस ढब की ध्यान में थीं जो कहने सुनने से बाहर हैं। मेंह सोने रूपे का बरसा देना और जिस रूप में चाहना हो जाना सब कुछ उसके आगे खेल था, गाने बजाने[१] में महादेव जी छुट सब उसके आगे कान पकड़ते थे। सरस्वती जिसको सब लोग कहते थे उन्ने भी कुछ गुनगुनाना उसी से सीखा था। उसके सामने छ

---

१ एक प्रति में 'और बीन, अधिक है।

राग छत्तीस रागिनियाँ आठ पहर रूप बंदियों का सा घेरे हुए उसकी सेवा में सदा हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं और वहां अतीतों को गिर कह कर पुकारते थे—भैरो गिर, बिभास गिर, हिंडोल गिर, मेघनाथ, केदारनाथ, दीपक सेन, जोतीसरूप, सारङ्ग रूप और अतीतिनें इस ढब से कहलाती थीं गूजरी, टोड़ी, असावरी, गौरी, मालसिरी, विलावली। जब चाहता अधर में सिंहासन पर बैठ कर उड़ासे फिरता था और नब्बे लाख अतीत गुटके अपने मुंह में लिये गेरुवे बसतर पहने जटा बिखेरे उसके साथ होते थे। जिस घड़ी रानी केतकी के बाप की चिट्ठी एक बगला उसके घर तक पहुँचा देता है गुरु महेन्दर गिर एक चिंघाड़ मार कर दल बादलों को ढलका देता है, बघम्बर पर बैठ भभूत अपने मुँह से मल कुछ कुछ पठन्त करता हुआ बाव के घोड़े के पीठ लगा और सब अतीत मृगछालों पर बैठे हुये गुटके मुँह में लिए हुए बोल उठे "गोरख जागा और मुछन्दर भागा"। एक आँख की झपक में वहाँ आ पहुँचता है जहाँ दोनों महाराजों में लड़ाई हो रही थी। पहले तो एक काली आँधी आई फिर ओले बरसे फिर टिड्डी[१] आई। किसी को अपनी सुध न रही। राजा सूरजभान के जितने हाथी घोड़े और जितने लोग और भीड़ भाड़ थी कुछ न समझा कि क्या किधर गयी और उन्हें कौन उठा ले गया।

---

१ पाठा० बड़ी आंधी।

राजा जगतपरकास के लोगों पर और रानी केतकी के लोगों पर केवड़े के बूँदों की नन्ही नन्ही फुहार सी पड़ने लगी। जब यह सब कुछ हो चुका तो गुरु जी ने अतीतियों से कहा 'उदैभान सूरजभान लछमीबास इन तीनों को हिरनी हिरन बना के किसी बन में छोड़ दो और जो उनके साथी हों उन सभों को तोड़ फोड़ दो।' जैसा कुछ गुरु जी ने कहा झट पट वही किया। बिपत[1] का मारा कुँवर उदैभान और उसका बाप वह राजा सूरजभान और उसकी मां लछमीबास हिरनी हिरन बन गए। हरी घास कई बरस तक चरते रहे और उस भीड़ भाड़ का तो कुछ थल बेड़ा न मिला किधर गए और कहां थे। बस यहाँ की यहीं रहने दो। फिर सुनो। अब रानी केतकी के बाप महाराजा जगतपरकास की सुनिये। उनके घर का घर गुरु जी के पांव पर गिरा और सब ने सर झुका कर कहा 'महाराज यह आप ने बड़ा काम किया। हम सब को रख लिया। जो आज आप न पहुँचते तो क्या रहा था। सब ने मर मिटने की ठान ली थी। इन पापियों से कुछ न चलेगी, यह जानते थे[2]। राज पाट हमारा अब निछावर करके जिसको चाहिए दे डालिए[3]। राज हमसे नहीं थम सकता। सूरजभान

---

१ पाठा० प्रीत। २ यह वाक्य एक प्रति में नहीं है।

३ एक प्रति में इसके आगे है—हम सब को अतीत बनाके अपने साथ लीजिए।

के हाथ से आपने बचाया। अब कोई उनका चचा चंदरभान चढ़ आवेगा तो क्या बचना होगा। अपने आप में तो सकत नहीं फिर ऐसे राज का फिट्टे मुहँ कहाँ तक आप को सताया करें।' जोगी महेन्दर गिर ने यह सुनकर कहा 'तुम हमारे बेटा बेटी हो, अनन्दें करो, दन दनावो, सुख चैन से रहो। अब वह कौन है जो तुम्हे आँख भर कर और ढब से देख सके। यह बघम्बर और यह भभूत हमने तुमको दिया। जो कुछ ऐसी गाढ़ पड़े तो इसमें से एक रोंगटा तोड़ आग में फूँक दीजिये। वह रोंगटा फुकने न पावेगा जो बात की बात में हम आ पहुँचेगे। रहा भभूत, सो इसलिए है जो कोई इसे अंजन करे वह सबको देखै और उसे कोई न देखै जो चाहे सो करे।

[जाना गुरूजी का राजा के घर]

गुरु महेन्दर गिर के पांव पूजे और 'धन धन महाराज' कहे। उनसे तो कुछ छिपाव न था। महाराज जगतपरकास उनको मुर्छल करते हुए अपनी रानियों के पास ले गए। सोने रूपे के फूल गोद भर भर सबने निछावर की और माथे रगड़े। उन्होंने सबकी पीठें ठोंकी। रानी केतकी ने भी गुरूजी के दण्डवत की पर जी में बहुतसी गुरूजी को गालियाँ दीं। गुरूजी सात दिन सात रातें यहाँ रह कर जगतपरकास को सिंघासन पर बैठाकर अपने बघम्बर पर बैठ उसी

डौल से कैलास पर आ धमके और राजा जगतपरकास अपने अगले ढब से राज करने लगा।

[रानी केतकी का मदनबान के आगे रोना और पिछली बातों का ध्यान कर जानसे हाथ धोना]

दोहरा

(अपनी बोली की धुन में)

रानी को बहुत सी बेकली थी।
कब सूझती कुछ बुरी भली थी॥
चुपके चुपके कराहती थी।
जीना अपना न चाहती थी॥
कहती थी कभी अरी मदनबान।
है आठ पहर मुझे वही ध्यान॥
यां प्यास किसे किसे भला भूख।
देखूँ वही फिर हरे हरे रूख॥
टपके का डर है अब यह कहिए।
चाहत का घर है अब यह कहिये॥
अमरइयों में उनका वह उतरना।
और रात का साँय साँय करना॥
और चुपके से उठ कर मेरा जाना।
और तेरा वह चाह का जताना॥

उनकी वह उतार अँगूठी लेनी ।
और अपनी अँगूठी उनको देनी ॥

आँखों में मेरे वह फिर रही है ।
जी का जो रूप था वही है ॥

क्यों कर उनको भूलूं क्या करूं मैं ।
मां बाप से कब तक डरूँ मैं ॥

अब मैंने सुना है ऐ मदनबान ।
बन बन हिरन हुए उदयभान ॥

चरते होंगे हरी हरी दूब ।
कुछ तू भी पसीज सोच में डूब ॥

मैं अपनी गई हूँ चौकड़ी भूल ।
मत मुझको सुँघा यह डहडहे फूल ॥

फूलों को उठा के यहाँ से ले जा ।
सौ टुकड़े हुआ मेरा कलेजा ॥

बिखरे जी को न कर इकट्ठा ।
एक घास का लाके रखदे गट्ठा ॥

हरियाली उसी की देख लूँ मैं ।
कुछ और तो तुझको क्या कहूँ मैं ॥

इन आँखों में है फड़क हिरन की ।
पलकें हुईं जैसे घास बन की ॥

जब देखिए डबडबा रही हैं।
ओसें आँसू की छा रही हैं॥
यह बात जो जी में गड़ गई है।
एक ओस सी मुझपै पड़ गई है॥

इसी डौल जब अकेली होती तो मदनबान के साथ ऐसे कुछ मोती पिरोती।

[रानी केतकी का चाहत से बेकल होना और मदनबान का साथ देने से नाहीं करना और लेना उस भभूत का जो गुरुजी दे गए थे आँख मिचौवल के बहाने अपनी माँ रानी कामलता से]

एक दिन रानी केतकी ने अपनी मां रानी कामलता को भुलावे में डाल कर यों कहा और पूछा—'गुरूजी गुसाईं महेन्दर गिरने जो भभूत मेरे बाप को दिया है, वह कहां रखा है और उससे क्या होता है?' रानी कमलता बोल उठी "तेरी वारी! तू क्यों पूछती है?' रानी केतकी कहने लगी "आँखे मिचौवल खेलने के लिए चाहती हूँ, जब अपनी सहेलियों के साथ खेलूं और चोर बनूँ तो मुझको कोई पकड़ न सके'। महारानी ने कहा 'वह खेलने के लिए नहीं है। ऐसे लटके किसी बुरे दिन के सम्भालने को डाल रखते हैं क्या जाने कोई घड़ी कैसी है कैसी नहीं।" रानी केतकी अपनी

मां की इस बात पर अपना मुंह थुथा कर उठ गई और दिन भर खाना न खाया। महाराज ने जो बुलाया तो कहा मुझे रुच नहीं। तब रानी कामलता बोल उठी 'अजी तुमने सुना भी, बेटी तुम्हारी आँख मिचौवल खेलने के लिए वह भभूत गुरुजी का दिया माँगती थी। मैंने न दिया और कहा लड़की यह लड़कपन की बातें अच्छी नहीं किसी बुरे दिन के लिए गुरुजी दे गए है इसी पर मुझसे रूठी है बहुतेरा बहलाती हूँ मानती नहीं।' महाराज ने कहा 'भभूत तो क्या मुझे तो अपना जी भी उससे प्यारा नहीं, उसके एक पहर के बहल जाने पर एक जी तो क्या जो करोर जी हों तो दे डालें।'' रानी केतकी को डिबिया में से थोड़ा सा भभूत दिया। कई दिन तलक आँख मिचौवल अपनी मां बाप के सामने सहेलियों के साथ खेलती सबको हँसाती रही जो सौ सौ थाल मोतियों के निछावर हुआ किए। क्या कहूँ! एक चुहल थी जो कहिये तो करोड़ो पोथियों में ज्यों की त्यों न आ सके।

[रानी केतकी का चाहत से बेकल होना और मदनबान का साथ देने से नहीं करना]

एक रात रानी केतकी उसी ध्यान में मदनबान से यों बोल उठी 'अब मैं निगोड़ी लाज से कुट करती हूँ तू मेरा साथ दे'। मदनबान ने कहा 'क्योंकर'। रानी केतकी ने वह भभूत का लेना उसे बताया और यह सुनाया 'यह सब

आँख मिचौवल के झाईं झप्पे मैंने इसी दिन के लिए कर रक्खे थे।' मदनबान बोली 'मेरा कलेजा थरथराने लगा। अरी यह माना कि तुम अपनी आँखों में उस भभूत का अंजन कर लोगी और मेरे भी लगा दोगी तो हमें तुम्हें कोई न देखेगा और हम तुम सब को देखेंगी पर ऐसी हम कहां जी चली हैं जो बिन साथ जोबन लिए बन बन में पड़ी भटका करें और हिरनों की सींगों पर दोनों हाथ डाल कर लटका करें और जिसके लिए यह सब कुछ है सो वह कहां और होय तो क्या जाने यह रानी केतकी है और यह मदन-बान निगोड़ी नोची खसोटी उजड़ी उनकी सहेली है। चूल्हे और भाड़ में जाय यह चाहत जिसके लिए आपको मां बाप का राज पाट सुख नींद लाज छोड़ कर नदियों के कछारों में फिरना पड़े सो भी बेडौल जो वह अपने रूप में होते तो भला थोड़ा बहुत आसरा था। ना जी यह तो हमसे न हो सकेगा जो महाराज जगतपरकास और महारानी कामलता का हम जान बूझकर घर उजाड़ें और उनकी जो इकलौती लाडली बेटी है उसको भगा ले जावें और जहाँ तहाँ उसे अटकावें और बनास पत्ती खिलावें और अपने चोंड़े को हिलावें। जब तुम्हारे और उसके मां बाप में लड़ाई हो रही थी और उन्ने उस मालिन के हाथ तुम्हें लिख भेजा था जो मुझे अपने पास बुलालो, महाराजों को आपस में लड़ने दो

जो होनी हो सो हो हम तुम मिल के किसी देस को निकल चलें। उस दिन न समझीं तब तो वह ताव भाव दिखाया अब जो वह कुँवर उदैभान और उसके मां बाप तीनों जी हिरनी हिरन बन गए। क्या जाने किधर होंगे। उनके ध्यान पर इतनी कर बैठिए जो किसी ने तुम्हारे घराने में न की अच्छी नहीं। इस बात पर पानी डाल दो नहीं तो पछतावोगी और अपना किया पावोगी। मुझसे कुछ न हो सकेगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती तो मेरे मुँह से जीते जी न निकलती पर यह बात मेरे पेट नहीं पच सकती। तुम अभी अल्हड़ हो तुमने अभी कुछ देखा नहीं जो ऐसी बात पर सचमुच ढलाव देखूँगी तो तुम्हारे बाप से कहकर वह भभूत जो वह मुवा निगोड़ा भूत मुछन्दर का पूत अवधूत दे गया है, हाथ मुरकवा कर छिनवा लूँगी'। रानी केतकी ने यह रूखाइयाँ मदनबान की सुनकर हँस कर टाल दिया और कहा 'जिसका जी हाथ में नहो उसे ऐसी लाखों सूझती हैं पर कहने और करने में बहुत सा फेर है। भला यह कोई अंधेर है जो मैं मां बाप राज पाट लाज छोड़कर हिरन के पीछे दौड़ती करछालें मारती फिरूँ पर अरी तू तो बड़ी बावली चिड़िया है जो यह बात सच जानी और मुझसे लड़ने लगी।'

[रानी केतकी भभूत लगाकर बाहर निकल जाना और सब छोटे बड़ों का तिलमिलाना]

दस पन्द्रह दिन पीछे एक दिन रानी केतकी बिन कहे मदनबान के वह भभूत आँखों में लगा के घर से बाहर निकल गई। कुछ कहने में आता नहीं जो मां बाप पर हुई। सब ने यह बात ठहराई, गुरु जी ने कुछ समझकर रानी केतकी को अपने पास बुला लिया होगा। महाराज जगत परकास और महारानी कामलता राज पाट उस वियोग में छोड़ छाड़ के एक पहाड़ की चोटी पर जा बैठे और किसी को अपने लोगों में से राज थामने को छोड़ गए। बहुत दिनों पर पीछे एक दिन महारानी ने महाराज जगतपरकास से कहा 'रानी केतकी का कुछ भेद जानतीं होगी तो मदनबान जानती होगी। उसे बुलाकर पूछा तो'[1]। महाराज ने उसे बुला कर पूछा तो मदनबान ने सब बात खोलियाँ। रानी केतकी के माँ बाप ने कहा 'अरी मदनबान जो तू भी उसके साथ होती तो हमारा जी भरता—अब जो वह तुझे ले जावे तो कुछ हचर पचर न कीजियो। उसके साथ हो लीजियो। जितना भभूत है तू अपने पास रख। हम कहाँ इस राख को चूल्हे में डालेंगे। गुरु जी ने तो दोनों राज्य का खोज खोया। कुँवर उदैभान और उसके मां बाप दोनों अलग हो रहे। जगतपरकास और कामलता को यों तलपट किया। भभूत न होती तो ये बातें काहे को सामने आतीं'।

---

१ एक प्रति में 'बहुत दिनों पीछे··· बुलाकर पूछो तो' नहीं है।

मदनबान भी उनके ढूँढ़ने को निकली। अंजन लगाए हुए 'रानी केतकी रानी केतकी' कहती हुई पड़ी फिरती थी। बहुत दिनों पीछे कहीं रानी केतकी भी हिरनों की दहाड़ों में 'उदैभान उदैभान' चिंघाड़ती हुई आ निकली। एक ने एक को ताड़ कर पुकारा 'अपनी तनी आँखे धो डालो'। एक डबरे पर बैठ कर दोनों की मुठभेड़ हुई। गले लग के ऐसी रोइयाँ जो पहाड़ों में कूक सी पड़ गई।

दोहरा

छा गई ठंडी साँस झाड़ों में।
पड़ गई कूक सी पहाड़ों में॥

दोनों जनियाँ एक अच्छी सी छाँव को ताड़ कर आ बैठियाँ और अपनी अपनी दोहराने लगीं।

[बातचीत रानी केतकी की मदनबान के साथ]

रानी केतकी ने अपनी बीती सब कही और मदनबान वही अगला झींकना झींका की और उनके मां बापने जो उनके लिए जोग साधा था जो वियोग लिया था सब कहा। जब यह सब कुछ हो चुकी तब फिर हँसने लगी। रानी केतकी उसके हँसने पर रुक कर कहने लगी।

---

१ एक प्रति में 'एक टीले पर' अधिक है।

दोहरा

हम नहीं हँसने से रुकते जिसका जी चाहे हँसे ।
[है] है वही अपनी कहावत आफँसे जी आफँसे ॥
अब तो सारा अपने पीछे झगड़ा झाँटा लग गया ।
पाँव का क्या ढूँढती हो जी में काँटा लग गया ॥

पर मदनबान से कुछ रानी केतकी के आँसू पुछते चले। उन्ने यह बात कही 'जो तुम कहीं ठहरो तो मैं तुम्हारे उन उजड़े हुए मां बाप को चुपचाप ले आऊँ और उन्हीं से इस नात को ठहराऊँ । गोसाईं महेन्दर गिर जिसकी यह सब करतूत है वह भी इन्हीं दोनों उजड़े हुए की मुट्ठी में है। अब भी जो मेरा कहा तुन्हारे ध्यान चढ़े तो गए हुए दिन फिर सकते हैं । पर तुम्हारे कुछ भावे नहीं हम क्या पड़ी बकती हैं। मैं इस पर बीड़ा उठाती हूँ'। बहुत दिनों पीछे रानी केतकी ने इस पर अच्छा कहा और मदनबान को अपने मां बाप के पास भेजा और चिट्ठी अपने हाथों से लिख भेजी जो आप से हो सके तो उस जोगी से ठहरा के आवें।

[मदनबान का महाराज और महारानी के पास फिर आना और चित चाही बात सुनाना]

मदनबान रानी केतकी को अकेली छोड़कर राजा जगतपरकास और रानी कामलता जिस पहाड़ पर बैठी थीं झट से आदेस करके आ खड़ी हुई और कहने

लगी 'लीजे आप राज कीजे आप का घर नए सिर से बसा और अच्छे दिन आए। रानी केतकी का एक बाल भी बाँका नहीं हुआ। उन्हीं के हाथों की लिखी चिट्ठी लाई हूँ, आप पढ़ लीजिए। आगे जो जी चाहे सो कीजिए'। महाराज ने उस बघम्बर में से एक रोंगटा तोड़कर आग पर रख के फूँक दिया। बात की बात में गोसाईं महेन्द्रगिर आ पहुँचा और जो कुछ नया सवाँग जोगी जोगिन का आया आँखों देखा। सबको छाती लगाया और कहा 'बघम्बर तो इसीलिए मैं सौंप गया था कि जो तुम पर कुछ हो तो इसका एक बाल फूँक दीजियो। तुम्हारी यह गत हो गयी। अब तक क्या कर रहे थे और किन नींदों में सोते थे। पर तुम क्या करो? यह खिलाड़ी जो रूप चाहै सो दिखावै, जो नाच चाहे नचावै। भभूत लड़की को क्या देना था। हिरनी हिरन उदैभान और सूरजभान उसके बाप और लछमीवास उसकी माँ का मैंने किया था। फिर उन तीनों को जैसा का तैसा करना कोई बड़ी बात न थी। अच्छा, हुई सो हुई। अब उठ चलो, अपने राज पर बिराजो और ब्याह की ठाठ करो। अब तुम अपनी बेटी को समेटो। कुँवर उदैभान को मैंने अपना बेटा किया और उसको लेके मैं ब्याहने चढूंगा'। महाराज यह सुनते ही अपनी गद्दी पर आ बैठे और उसी घड़ी यह कह दिया 'सारी छतों और कोठों को गोंटे से मढ़ो और सोने और रूपे

के सुनहरे रुपहरे सेहरे सब झाड़ पहाड़ों पर बाँध दो और पेड़ों में मोती की लड़ियाँ बाँध दो और कह दो—चालीस दिन चालीस रात तक जिस घर में नाच आठ पहर न रहेगा उस घरवाले से मैं रूठ रहूँगा और यह जानूँगा यह मेरे दुख सुख का साथी नहीं। और छ महीने कोई चलने वाला कहीं न ठहरे रात दिन चला जावे'। इस हेर फेर में वह राज था। सब कहीं यही डौल था।

[जाना महाराज महारानी और गुसाईं महेन्दर गिर का रानी केतकी के लिए]

फिर महाराज और महारानी और महेन्दर गिर मदन-बान के साथ जहाँ रानी केतकी चुपचाप सुन खींचे हुए बैठी थी चुपचुपाते वहाँ आन पहुँचे। गुरु जी रानी केतकी को अपने गोद में लेकर कुँवर उदैभान का चढ़ावा चढ़ा दिया और कहा 'तुम अपने मां बाप के साथ अपने घर सिधारो अब मैं बेटे उदैभान को लिए हुए आता हूँ'। गुरु जी गोसाईं जिनको दण्डौत है सो तो वह सिधारते हैं। आगे जो होगी सो कहने में आवेगी। यहाँ पर धूम धाम फैलावा अब ध्यान कीजिए। महाराज जगतपरकास ने अपने सारे देस में कह दिया 'यह पुकार दे जो यह न करेगा उसकी बुरी गत होवेगी। गाँव गाँव में अपने सामने छिपोले बना बना के सूहे कपड़े उन पर लगा के गोट धनुष की और गोखरू रुपहले

सुनहरे की किरनें और डाँक टाँक टाँक रक्खो और जितने बड़, पीपल नए पुराने जहाँ जहाँ पर हों उन के फूल के सेहरे बड़े बड़े ऐसे जिसमें सिरेसे लगा पैर तलक पहुँचे, बाँधो।

चौतुक्का

पौदों ने रँगा के सूहे जोड़े पहने।
सब पाँव में डालियों ने तोड़े पहने॥
बूटे बूटे ने फूल फूल के गहने पहने।
जो बहुत न थे तो थोड़े थोड़े पहने॥

जितने डहडहे और हरियावल फूल पात थे, सबने अपने हाथ में चहचही मेंहदी की रचावट की सजावट के साथ जितनी समावट में समा सके, कर लिए और जहाँ जहाँ नवल ब्याही दूल्हनें नन्हीं नन्हीं फलियों की और सुहागिनें नई नई कलियों के जोड़े पँखुड़ियों के पहने हुई थीं। सबने अपनी अपनी गोद सुहाग और प्यार के फूल और फलों से भरी और तीन बरस का पैसा सारे उस राजा के राजभर में जो लोग दिया करते थे, उस ढब से हो सकता था खेती बारी करके हल जोत के और कपड़ा लत्ता बेंचकर सो सब उनको छोड़ दिया और कहा जो अपने अपने घरों में बनाव की ठाट करें। और जितने राजभर में कूँएँ थे खँडसालों की खँडसालें उनमें उड़ेल गईं और सोर बनों और पहाड़ तलियों

में लाल पटों[1] की झमझमाहट रातों को दिखाई देने लगीं। और जितनी झीलें थीं उनमें कुसुम और टेसू और हरसिंगार पड़ गया और केसर भी थोड़ी थोड़ी घोले में आगई। फुनगे से लगा जड़ तलक जितने झाड़ झङ्खाड़ों में पत्ते और पत्ती बँधी थी उन पर रुपहरी सुनहरी डाँक गोंद लगाकर चिपका दिए और सभों को कह दिया जो सूही पगड़ी और सूहे बागे बिन कोई किसी डौल किसी रूप से फिरे चले नहीं और जितने गवैये बजवैये भाँड़ भगतिए रहसधारी और सङ्गीत पर नाचनेवाले थे सबको कह दिया जिस जिस गाँव में जहाँ हों अपने अपने ठिकानों से निकल कर अच्छे अच्छे बिछौने बिछाकर गाते नाचते कूदते रहा करें।

[ढूँढना गोसाईं महेन्दर गिर का कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप को, न पाना और बहुत तलमलाना]

यहाँ की बात और चुहलें जो कुछ है सो यहीं रहने दो अब आगे सुनो। जोगी महेन्दर और उसके नब्बे लाख अतीतों ने सारे बन के बन छान मारे पर कहीं कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप का ठिकाना न लगा तब उन्होंने राजा इन्दर को चिट्ठी लिख भेजी। उसे चिट्ठी में यह लिखा हुआ

---

१ पाठा० लालटेन।

था—'इन तीनों जनों को हिरनी हिरन कर डाला था, अब उनको ढूँढता फिरता हूँ कहीं नहीं मिलते और मेरी जितनी सकत थी अपनी सी बहुत कर चुका हूँ। अब मेरा मुँह से से निकला कुँवर उदैभान मेरा बेटा मैं उसका बाप और ससुराल में सब ब्याह का ठाट हो रहा है। अब मुझ पर बिपत्ती गाढ़ी पड़ी जो तुमसे हो सके, करो।' राजा इन्दर चिट्ठी के देखते ही गुरू महेन्दर के देखने को सब इन्द्रासन समेट कर आ पहुँचे और कहा 'जैसा आप का बेटा वैसा मेरा बेटा। आप के साथ मैं सारे इन्द्रलोक को समेट कर कुँवर उदैभान को ब्याहने चढ़ूंगा।' गोसाईं महेन्दर गिर ने राजा इन्दर से कहा 'हमारी आपकी एक ही बात है पर कुछ ऐसा सुझाइये जिससे कुँवर उदैभान हाथ आ जावे।' राजा इंदर ने कहा 'जितने गवैए और गायने हैं, उन सबको साथ लेकर हम और आप सारे बनों में फिरा करें कहीं न कहीं ठिकाना लग जायगा।' गुरु ने कहा 'अच्छा।'

[हिरन हिरनी का खेल बिगड़ना और कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप का नये सिरे से रूप पकड़ना]

एक रात राजा इन्दर और गोसाईं महेन्दर गिर निखरी हुई चांदनी में बैठे राग सुन रहे थे करोड़ों हिरन राग के ध्यान में चौकड़ी भूल आस पास सर झुकाए खड़े थे।

इसी में राजा इन्दर ने कहा 'इन सब हिरनों पर पढ़के-मेरी सकत गुरूकी भगत फुरे मंत्र ईस्वरोवाचा-पढ़ के एक एक छींटा पानी का दो।' क्या जाने वह पानी कैसा था छीटों के साथ ही कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप तीनों जने हिरनों का रूप छोड़ कर जैसे थे वैसे हो गए। गोसाईं महेन्दर गिर और राजा इन्दर ने उन तीनों को गले लगाया और बड़ी आव भगत से अपने पास बैठाया और वही पानी घड़ा अपने लोगों को देकर वहाँ भेजवाया जहाँ सर मुँड़वाते ही ओले पड़े थे। राजा इन्दर के लोगों ने जो पानी के छींटे वही ईश्वरो वाच पढ़ के दिए तो जो मरे थे सब उठ खड़े हुए और जो जो अधमुए भाग बचे थे, सब सिमट आए। राजा इन्दर और महेन्दर गिर कुँवर उदैभान और राजा सूरजभान और रानी लछमीबास को लेकर एक उड़न-खटोले पर बैठकर बड़ी धूम धाम से उनको उनके राज पर बिठाकर ब्याह के ठाट करने लगे। पसेरियन हीरे मोती उन सब पर से निछावर हुए। राजा सूरजभान और कुँवर उदैभान और रानी लछमीबास चितचाही असीस पाकर फूली न समाई और अपने सारे राज को कह दिया "जेंवर भौंरे के मुँह खोल दो। जिस जिस को जो जो उकत सूझे बोलदो। आज के दिन का सा कौन सा होगा। हमारी आँखो की पुतलियों का जिससे चैन है उस लाडले इकलौते का ब्याह और हम तीनों का हिरनों के रूप

से निकल फिर राज पर बैठना । पहिले तो यह चाहिए, जिन जिन की बेटियाँ बिन ब्याहियाँ हों उन सब को उतना करदो जो अपने जिस चाव चोज से चाहे अपनी गुड़ियाँ सँवार के उठावें और जब तक जीती रहें सब की सब हमारे यहाँ से खाया पकाया रींधा करैं । और सब राज भर की बेटियाँ सदा सुहागिनें बनी रहें और सूहे राते छुट कभी कोई कुछ न पहना करैं । और सोने रूपे के केवाड़ गङ्गा जमुनी सब घरों में लग जाएँ और सब कोठों के माथों पर केसर और चंदन के टीके लगे हों । और जितने पहाड़ हमारे देस में हों उतने ही पहाड़ सोने रूपेके सामने खड़े हो जायँ और डाँगों की चोटियाँ मोतियों की माँग से बिन माँगे ताँगे भर जायँ और फूलों के गहने और बंधनवार से सब झाड़ फहाड़ लदे फँदे रहें और इस राज से लगा उस राज तक अधर में छत सी बाँध दो और चप्पा चप्पा कहीं ऐसा न रहे जहाँ भीड़ भड़क्का धूम धड़क्का न हो जाय । फूल बहुत सारे खंड जाय जो नदियाँ जैसे सचमुच फूल की बहतियाँ हैं यह समझा जाय । और यह डौल कर दो जिधर से दूल्हा को ब्याहने चढ़ें सब लाडली और हीरे और पुखराज की उमड़ में इधर और उधर कँवल की टट्टियाँ बन जायँ और क्यारियाँ सी हो जायँ जिनके बीचोबीच से हो निकलें और कोई डाँग और

१ पाठा० घड़े ।

पहाड़ तली का चढ़ाव उतार ऐसा दिखाई न दे जिसकी गोद पँखुरियों से भरी हुई न हों।

[राजा इंद्र का कुँवर उदैभान का साथ करना]

राजा इन्दर ने कह दिया, 'वह रंडियाँ चुलबुलियाँ जो अपने मद में उड़ चलियाँ हैं उनसे कह दो–सोलह सिंगार बाल गजमोती पिरो अपने अपने अचरज और अचम्भे के उड़न खटोलों की इस राज से लेकर उस राज तक अधर में छत सी बाँध दो। कुछ उस रूप से उड़ चलो जो उड़न खटोलियों की क्यारियाँ और फुलवारियाँ सैकड़ों कोस तक हो जायँ और अधर ही अधर मिरदंग बीन जलतरंग मुँहचंग घुंघुरू तबले घंटताल और सैकड़ों इस ढब के अनोखे बाजे बजते आएँ और उन क्यारियों के बीच में हीरे पुखराज अनबेध मोतियों के झाड़ और लालपटों की भीड़भाड़ की झमझमाहट दिखाई दे और इन्हीं लालपटों में से हथफूल फूलझड़ियाँ जाही जुही कदम गेंदा चमेली इस ढब से छूटने लगें जो देखने वालों की छातियों के केवाड़ खुल जाएँ और पटाखे जो उछल उछल फूटें उनमें से हँसती सुपारी और बोलती करौती ढल पड़े और जब हम सबको हँसी आवे तो चाहिए उस हँसी से मोतियों की लड़ियाँ झड़ें जो सब के सब उनको चुन चुन के राजे हो जायँ। डोमनियों के रूप में सारंगियाँ छेड़ छेड़ सोहलें गावो, दोनों हाथ हिला के

अँगुलियाँ नचावो, जो किसी ने सुनी हो। वह ताव भाव व चाव देखावो, ठुड्डियाँ गिनगिनावो, नाक भँवे तान तान भाव बतावो, कोई छुट कर रह न जावो। ऐसा चाव लाखों बरस में होता है'। जो जो राजा इन्दर ने अपने मुँह से निकाला था आँख की झपक के साथ वही होने लगा। और जो कुछ उन दोनों महाराजों ने कह दिया था, सब कुछ उसी रूप से ठीक ठीक हो गया। जिस ब्याह की यह कुछ फैलावट और जमावट और रचावट ऊपर तले इस जमघटे के साथ होगी, और कुछ फैलावा क्या कुछ होगा, यही ध्यान कर लो।

[ठाट करना गोसाईं महेन्दरगिर का]

जब कुँवर उदैभान को वे इस रूप से ब्याहने चढ़े और वह बाम्हन जो अँधेरी कोठरी में मुँदा हुआ था उसको भी साथ ले लिया और बहुत से हाथ जोड़े और कहा 'बाम्हन देवता हमारे कहने सुनने पर न जावो, तुम्हारी जो रीत चली हुई आई है बताते चलो'। एक उड़न-खटोले पर वह भी रीत बताके साथ हो लिया। राजा इन्दर और महेन्दरगिर ऐरावत हाथी पर झूलते झालते देखते भालते चले जाते थे। राजा सूरजभान दूल्हा के घोड़े के साथ माला जपता हुआ पैदल था। इसीमें एक सन्नाटा हुआ। सब घबरा गए। उस सन्नाटे में जो वह ९० लाख अतीत थे सब जोगी से बने हुए सब माले मोतियों की लड़ियों के गले में डाले हुए और

गातियाँ उसी ढब की बाँधे हुए मिरिगछालों और बघंबरों पर आ ठहर गए। लोगों के जियों में जितनी उमंग छा रही थीं वह चौगुनी पचगुनी हो गईं। सुखपाल और चंडोल और रथों पर जितनी रानियाँ थीं महारानी लछमीबास के पीछे चली आतियाँ थीं। सब को गुदगुदियाँ सी होने लगीं। इसी में भरथरी का सवाँग आया। कही जोगी जतियाँ आ खड़े हुए। कहीं कहीं गोरख जागे कहीं मुछन्दर नाथ भगे। कहीं मच्छ कच्छ बराह सन्मुख हुए। कही परसुराम, कहीं बामन रूप, कहीं हरनाकुस और नरसिंह, कहीं राम लछमन सीता समेत आईं, कहीं रावन और लङ्का का बखेड़ा सारे का सारा सामने देखाई देने लगा। कहीं[1] कैन्हया जी की जनमअस्टमी होना और बसुदेव का गोकुल ले जाना और उनका बढ़ चलना, गाएँ चरानी और मुरली बजानी और गोपियों से धूम मचानी और राधिका-रहस और कुब्जा का बस कर लेना, कहीं करील की कुंजें, बंसीबट, चीर घाट, बृन्दावन, सेवा कुंज, बरसाने में रहना और कन्हैया से जो जो हुआ था सब का सब ज्यों का त्यों आँखों में आना और द्वारिका जाना और वहां सोने का घर बनाना इधर बिरिज को न आना और सोलह सौ गोपियों का तलमलाना सामने आगया। उनमें से ऊधो

१ एक प्रति में 'कहीं महादेव और पारबती दिखाई पड़े' अधिक है।

का हाथ पकड़ कर एक गोपी के इस कहने ने सबको रुला दिया जो इस ढब से बोल के उनसे रुँधे हुए जी को खोले थी—

चौतुक्का

जब छाँड़ि करील की कुंजन कों हरि द्वारिका जीउ मां जाय बसे।
कुलधूत के धाम बनाय घने महराजन के महराज भए ॥
तज मोर मुकुट अरु कामरिया कछु औरहि नाते जोड़ लिए।
धरे रूप नए किये नेह नए अरु गइयाँ चरायबो भूल गए ॥

[अच्छापना घाटों का]

कोई क्या कह सके, जितने घाट दोनों राज की नदियों में थे, पक्के चाँदी के थक्के से हो कर लोगों को हक्का बक्का कर रहे थे। निवाड़े, भौलिए, बजरे, लचके, मोर पंखी, स्याम सुंदर, रामसुंदर और जितनी ढब की नावें थी सोनहरी रूपहरी, सजी सजाई कसी कसाई सौ सौ लचके खातियाँ आतियाँ जातियाँ ठहरातियाँ फिरतियाँ थी। उन सभी पर खचाखच कंचनियाँ, राम-जनियां, डोमनियाँ भरी हुई अपने अपने करतबों में नाचती गाती बजाती कूदती फाँदती धूमें मचातियाँ अँगड़ातियाँ जँभातियाँ उँगुलियाँ नचातियाँ और ढुली पड़तियाँ थीं। और कोई नाव ऐसी न थी जो सोने रूपे के पत्तरों से मढ़ी हुई और सवारी से डटी हुई न हो। और बहुत सी नावों पर हिंडोले भी उसी ढब के थे। उनपर

गायनें बैठी झूलती हुई सोहनी, केदारा, बागेसरी, कान्हड़ों में गा रही थीं। दल बादल ऐसे नेवाड़ों के सब झीलों में छा रहे थे।

[आ पहुँचना कुँवर उदैभान का ब्याह के ठाठ के साथ दूल्हन की ड्योढ़ी पर]

इस धूमधाम के साथ कुँवर उदैभान सेहरा बाँध जब दूल्हन के घर तक आ पहुँचा और जो रीतें उनके घराने में चली आई थीं होने लगियाँ। मदनबान रानी केतकी से ठठोली करके बोली 'लीजिए अब सुख समेटिए भर भर झोली सिर निहुराये क्या बैठी हो, आवो न टुक हम तुम झरोखों से उन्हें झाँकें'। रानी केतकी ने कहा 'न री, ऐसी नीच बातें न कर। हमें क्या पड़ी जो इस घड़ी ऐसी झेल कर रेलपेल ऐसी उठें और तेल फुलेल भरी हुई उनके झाँकने को जा खड़ी हों'। मदनबान उनकी इस रुखाई को उड़नझाईं की बातों में डाल कर बोली।

[बोलचाल मदनबान की अपनी बोली के दोहों में]

यों तो देखो वा छड़ जी वा छड़ जी वा छड़।
हम से जो आने लगी हैं आप यों मुहरे कड़॥
छान मारे बन के बन थे आप ने जिन के लिए।
वह हिरन जोबन के मद में हैं बने दूल्हा खड़े॥

तुम न जावो देखने को जो उन्हें क्या बात है ।
ले चलेंगे आप को हम हैं इसी धुन पर अड़े ॥
है कहावत जी को भावै और यो मुँड़ियाँ हिलें ।
झाँकने के ध्यान में उनके हैं सब छोटे बड़े ॥
साँस ठंढी भरके रानी केतकी बोली कि सच ।
सब तो अच्छा कुछ हुआ पर अब बखेड़े में पड़े ॥

[वारी फेरी होना मदनबान का रानी केतकी पर और उसकी बास का सूँघना और उनींदे पन से ऊँघना]

उस घड़ी मदनबान को रानी केतकी के बादले का जूड़ा[1] और भीनाभीनापन और अँखंडियों का लजाना आर बिखरा बिखरा जाना भला लग गया तो रानी केतकी की बास सूँघने लगी और अपनी आँखों को ऐसा कर लिया जैसे कोई ऊँघने लगता है । सिर से लगी पाँव तक वारी फेरी होके तलवे सुहलाने लगी । तब रानी केतकी झट एक धीमी सी सिसकी लचके के साथ ले उठी । मदनबान बोली ''मेरे हाथ के ठोंके से वही पाँव का छाला दुख गया होगा जो हिरनों को ढूँढने में पड़ गया था ।' इसी दुख की चुटकी से

---

१ पाठा० 'मांजे या बानजे का जोड़' ।

रानी केतकी ने मसोस कर कहा 'काँटा अड़ा तो अड़ा, छाला पड़ा तो पड़ा, पर निगोड़ी तू क्यों मेरी पनछाला हुई' ।

[सराहना रानी केतकी के जोबन का]

केतकी का भला लगना लिखने पढ़ने से बाहर है । वह दोनों भँवों की खिंचावट और पुतलियों में लाज की समावट और नोकीले पलकों की रुँधावट हँसी का लगावट और दन्तड़ियों में मिस्सी की उदाहट और इतनी सी बात पर रुकावट है । नाक और त्योरी का चढ़ा लेना, सहेलियों को गालियाँ देना और चल निकलना और हिरनों के रूप से करछालें मारकर परे उछलना कुछ कहने में नहीं आता ।

[सराहना कुँवर जी के जोबन का]

कुँवर उदैभान के अच्छेपन का कुछ हाल लिखना किससे हो सके । हायरे उनके उभार के दिनों का सुहानापन, चाल ढाल का अच्छन वच्छन, उठती हुई कोंपल की काली का फबन और मुखड़े का गदराया हुआ जोबन जैसे बड़े तड़के धुँधले के हरे भरे पहाड़ों की गोद से सूरज की किरनें निकल आती हैं । यही रूप था । उनके भीगे मसों में से रस टपका पड़ता था । अपनी परछाईं देखकर अकड़ता । जहाँ जहाँ छाँव थी, उसका डौल ठीक ठीक उनके पाँव तले, जैसे धूप थी ।

[दूल्हा का सिंघासन पर बैठना]

दूल्हा उदैभान सिंघासन पर बैठा और इधर उधर राजा इन्दर और जोगी महेन्दर गिर जम गए और दूल्हा का बाप अपने बेटे के पीछे माला लिए कुछ गुनगुनाने लगा। और नाच लगा होने और अधर में जो उड़नखटोले राजा इन्दर के अखाड़े के थे सब उसी रूप से छत बाँधे हुए थिरका किए। दोनों महारानियाँ समधिन बन के आपस में मिलियाँ चलियाँ और देखने दाखने को कोठों पर चंदन के किवाड़ों के आड़ तले आ बैठियाँ। सवाँग संगीत भँड़ताल रहस हँसी होने लगीं। जितनी राग रागिनियाँ थी-ईमन कल्यान, सुद्ध कल्यान, झिंझोटी, कान्हडा, खम्माच, सोहनी, परज, बिहाग, सोरठ, कालंगड़ा, भैरवी, षट ललित भैरों रूप पकड़े हुए सचमुच के जैसे गानेवाले होते हैं उसी रूप में अपने अपने समय पर गाने लगे और गाने लगियाँ। उस नाच का जो ताव भाव रचावट के साथ हो, किसका मुँह जो कह सके। जितने महाराजा जगत परकास के सुख चैन के घर थे-माधो बिलास, रसधाम, कृष्णनिवास, मच्छीभवन, चन्द्रभवन-सबके सब लप्पे से लपेटे और सच्चे मोतियों की झालरें अपने अपने गाँठ में समेटे हुए एक भेष के साथ मतवालों के मुँह चूम रहे थे।

बीचों बीच उन सब घरों के एक आरसी-धाम बना था

जिसकी छत और किवाड़ और आँगन में आरसी छुट कहीं लकड़ी ईंट पत्थर की पुट एक उँगुली के पोर बराबर न लगी थी। चाँदनी का जोड़ा पहने जब रात घड़ी एक रह गई थी तब रानी केतकी सी दूल्हन को उसी आरसीभवन में बैठाकर दूल्हा को बुला भेजा। कुँवर उदैभान कन्हैया सा बना हुआ सिर पर मुकुट धरे सेहरा बाँधे उसी तड़ावे और जमघट के साथ चाँद सा मुखड़ा लिए जा पहुँचा। जिस जिस ढब से बाम्हन और पंडित कहते गए और जो जो महाराजों में रीतें होती चली आई थीं उसी डौल से उसी रूपसे भँवरी गठ जोड़ा हो लिया।

दोहा।

अब उदैभान और रानी केतकी दोनों मिले।
आस के जो फूल कुम्हलाए हुए थे फिर खिले॥
चैन होता ही न था जिस एक को उस एक बिन।
रहने सहने सो लगे आपस में अपने रात दिन॥
ऐ खिलाड़ी यह बहुत सा कुछ नहीं थोड़ा हुआ।
आनकर आपस में जो दोनों का गठजोड़ा हुआ॥
चाह के डूबे हुए ऐ मेरे दाता सब तिरैं।
दिन फिरे जैसे इन्हों के वैसे दिन अपने फिरैं॥

यह उड़नखटोलीवालियाँ जो अधर में छत सी बाँधे हुए थिरक रही थीं, भर भर झोलियाँ और मूठियाँ हीरे और मोतियाँ से निछावर करने के लिये उतर आइयाँ और उड़न-खटोले अधर में ज्यों के त्यों छत बाँधे हुए खड़े रहे । और वह दूल्हा दूल्हन पर से सात सात फेरे वारी फेरे होने में पिस गइयाँ । सभों को एक चुपकी सी लग गई । राजा इन्दर ने दूल्हन की मुँह दिखाई में एक हीरे का एक डाल छपरखट और एक पेड़ी पुखराज की दी और एक पारिजात का पौधा जिसमें जो फल चाहो सो मिले दूल्हा दूल्हन के सामने लगा दिया । और एक कामधेनु गाय की पाठिया बछिया भी उसके पीछे बाँध दी और इक्कीस लौड़ियाँ उन्हीं उड़नखटोलेवालियों में से चुन के अच्छी से अच्छी सुथरी से सुथरी गाती बजातियाँ सीतियाँ पिरोतियाँ और सुघर से सुघर सौंपी और उन्हें कह दिया 'रानी केतकी छुट उनके दूल्हा से कुछ बात चीत न रखना नहीं तो सब की सब पत्थर की मूरतें हो जावोंगी और अपना किया पावोगी' । और गोसाईं महेन्दर गिर ने बावन तोले पाव रत्ती जो उसकी इक्कीस चुटकी आगे रक्खी और कही "यह भी एक खेल है जब चाहिये बहुत सा ताँबा गला के एक इतनी सी चुटकी छोड़ दीजे कंचन हो जायगा' । और जोगीजी ने सभों से यह कह दिया 'जो लोग उनके ब्याह में जागे हैं उनके घरों में चालीस दिन

चालीस रात सोने की नदियों के रूप में मनी[1] बरसे । जब तक जिएँ किसी बात की फिर न तरसे ।' नौ लाख निन्नानबे गायें सोने रूपे के सिंगौरियों की जड़ाऊ गहना पहने हुए घुँघरू छमछमातियाँ महंतों को दान हुईं । और सात बरस का पैसा सारे राज को छोड़ दिया गया । बाइस सै हाथी और छत्तीस सै ऊंट रुपयों के तोड़े लादे हुए लुटा दिया । कोई उस भीड़भाड़ में दोनों राज का रहने वाला ऐसा न रहा जिसको घोड़ा जोड़ा रुपयों का तोड़ा जड़ाऊ कपड़ों के जोड़े न मिले हों । और मदनबान छुट दूल्हा दूल्हन पास किसीका हियाव न था जो बिन बुलाए चली जाए । बिन बुलाए दौड़ी आए तो वही आए और हँसाए तो वही हँसाए । रानी केतकी के छेड़ने के लिए उनके कुँवर उदैभान को कुँवर क्योड़ाजी कहके पुकारती थी और ऐसी बातों को सौ सौ रूप से सँवारती थी ।

दोहा ।

घर बसा जिस रात उन्हों का तब मदनबान उस घड़ी ।
कह गई दूल्हा दुल्हन से ऐसी सौ बातें कड़ी ॥
जी लगा कर केवड़े से[2] केतकी का जी खिला ।
सच है इन दोनों जियों को अब किसी की क्या पड़ी ।

---

१ पाठा० टिड्डियों के रूप में हुन ।
२ पाठा० बास पाकर केवड़े की ।

क्या न आई लाज कुछ अपने पराए की अजी ।
थी अभी उस बात की ऐसी भला क्या हड़बड़ी ॥

मुसकिरा के तब दुल्हन ने अपने घूंघट से कहा ।
मोगरा सा हो कोई खोले जो तेरी गुलझड़ी ॥

जी में आता है तेरे होठों को मलवा लूं अभी ।
बल बे ऐ रंडी तेरे दाँतों के मिस्सी की घड़ी ॥

इति

कमलमणि-ग्रंथमाला—४

शा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी

लेखक और संपादक

व्रजरत्नदास बी.ए.

प्रकाशक

कमलमणि ग्रंथमाला कार्यालय,

काशी

संस्करण] १९८९ [मू० ॥=)

भूमिका

हिन्दी गद्य-साहित्य के विकास पर दृष्टि दौड़ाने से ज्ञात होता है कि इसके आधुनिक अर्थात् खड़ी बोली के साहित्य का आरंभ अठारहवीं शताब्दी ईसवी के साथ साथ हुआ है। यद्यपि बोल चाल में गद्य ही का प्रयोग होना अनिवार्य है पर साहित्य में सर्वदा पद्य ही से श्रीगणेश होता है। भावोद्रेक स्वभावतः काव्यमय है। आधुनिक गद्य-साहित्य का यह आरंभ राजनैतिक कारणों से हुआ है। जिस प्रकार हिन्दू-मुसल्मानों के संसर्ग से 'उर्दू' व्यावहारिक भाषा की उत्पत्ति अनिवार्य थी उसी प्रकार देशी-विलायती सम्पर्क के लिए एक दूसरे की भाषा का ज्ञान आवश्यक था। विद्या-प्रिय अंग्रेज़ों ने व्यवहार के लिए उर्दू सी एक नई भाषा न गढ़ कर यहीं की भाषा सीखने का निश्चय किया और इस कार्य के लिए पुस्तकें तैयार कराने को फोर्ट विलिअम के अध्यक्ष डा० जौन गिलक्राइस्ट नियुक्त हुए। यहीं हिन्दी तथा उर्दू के अनेक गद्य ग्रन्थ तैयार हुए। इस कौलेज के हिन्दी लेखक पं० लल्लूलाल जी तथा पं० सदल मिश्र थे। पर इसी समय के लगभग लखनऊ तथा प्रयाग में दो अन्य सज्जन भी इसी कार्य में दत्तचित्त हो रहे थे जिनके नाम सैयद इंशाअल्लाह खाँ तथा मुं० सदासुखलाल था। इस प्रकार ये चारों सज्जन हिन्दी खड़ी बोली के गद्य साहित्य के प्रथम आचार्य माने जाते हैं जिनमें से स्वसम्पादित प्रेमसागर की भूमिका में लल्लूलाल जी की जीवनी पर प्रकाश डाला जा चुका है। उक्त ग्रन्थ काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित किया गया है।

वहीं से सदल मिश्र का नासिकेतोपाख्यान और इंशा की रानी केतकी की कहानी भी प्रकाशित हो चुकी है। अन्तिम पुस्तक के देखने से मुझे संतोष नहीं हुआ। इंशा की जीवनी, जो कुछ ऐसी विचित्र है कि वह प्रत्येक मनुष्य के लिए पठनीय है, इसमें बहुत ही संक्षेप में लिखी गई है। कहानी में भी अशुद्धियाँ रह गई हैं और इंशा की कुछ उर्दू रचना भी देकर उनके समय की भाषा पर हिन्दी पाठकों को विचार करने का अवसर नहीं दिया गया है। इन्हीं विचारों से इस पुस्तक के इस संस्करण के प्रकाशन का प्रयास किया गया है।

इंशा की जीवनी लिखने का केवल एक ही साधन मुख्य है और वह प्रो० आज़ाद का आबेहयात है। एक तो इंशा का जीवन ही कुछ औपन्यासिक रूप का था और उस पर प्रो० साहब की नमक मिर्च लगी हुई लेखनी से उसका वर्णन किया गया जिससे उसमें बड़ी रोचकता आ गई है। इस जीवनी में उसी का अनुकरण करते हुए भी कुछ गाम्भीर्य लाने का प्रयत्न किया गया है। इनकी जीवनी के विषय में कुछ विशेष अनुसंधान किया गया है पर कुछ नया प्रकाश नहीं पड़ा है। इनकी रचनाएँ बहुत हैं पर उनमें से कुछ ही ऐसे गज़ल चुन लिए गए हैं जिनमें हिन्दी शब्दों का मेल अधिक और फारसी तथा अरबी का कम है। पाद टिप्पणी में कठिन शब्दों के अर्थ भी दे दिए गए हैं।

अन्त में 'रानी केतकी की कहानी या उदैभान चरित' दिया गया है जिसके कारण ही 'इंशा' को हिंदी साहित्य के इतिहास में अच्छा स्थान मिला है। इसके सम्पादन में निम्नलिखित प्रतियों से सहायता ली गई है।

१. प्राचीन हस्तलिखित प्रति की प्रतिलिपि, जो का० ना० प्र० सभा में सुरक्षित है।

२. उर्दू में प्रकाशित प्रति की प्रतिलिपि।

३. सं० १९०३ वि० में कलकत्ते की प्रकाशित प्रति।

४. सन् १८७४ ई० में प्रकाशित राजा शिवप्रसाद का गुटका।

५. सन् १९०५ ई० में लखनऊ में प्रकाशित प्रति।

६. सभा द्वारा प्रकाशित और रायसाहब बा० श्यामसुंदर दास बी० ए० द्वारा सम्पादित प्रति।

इस प्रकार यथासाध्य जितने संस्करण प्राप्त हो सके, प्राप्त किये गए। इन पर तथा अन्य संस्करणों पर कुछ नोट लिखना आवश्यक है। प्रथम दोनों तो वे ही हैं जिनकी सहायता से सभा वाला संस्करण तैयार किया गया है और उनकी सहायता के लिए मैं सभा और उस संस्करण के सम्पादक का आभारी हूँ। यह कहानी लगभग सं० १८६० वि० (सन् १८०३ ई०) के लिखी गई थी और सबसे प्राचीन छपे हुए संस्करण का हवाला पूर्वोक्त तीसरी प्रति से मुझे ज्ञात हुआ। यह संस्करण भी सन् १८४६ ई० का है और प्राप्त संस्करणों से सबसे प्राचीन होते हुए भी प्राचीन तर संस्करण का उल्लेख करता है। इस कारण इसे विशेष महत्व का समझ कर सामने के पन्ने पर इसके मुख पृष्ठ की पूरी नकल दे दी जाती है। इसके पण्डित सम्पादक ने शब्दों को कुछ संस्कृत रूप दे दिए हैं और आरंभ में गणेश जी की स्तुति में एक सोरठा लिखा है।

विघन हरण गणराय मूषकवाहन गजवदन।
गणपति चरण मनाय तबै काज कछु कीजिए॥

श्री श्रीराजराजेश्वरी सहाय ॥

कहानी रानी केतकी की

ठेठ हिन्दुस्थानी भाषा में जो आगे मुन्शी हरीराम पण्डित
जी लखनऊ वासी ने संग्रह किई थी सो अब कहीं देख
नहीं पड़ती और गुणग्राहकों को ऐसे पदार्थ के पढ़ने
सुन्ने की बड़ी चाहत रहती है इसलिए श्रीयुक्त
कृपाकर दयावर श्रीमधुसूदनजी जयपुर निवासी
स्कूलबुक सुसैटी के ग्रंथ शोधक और परम
मित्र अति सुबुद्धि श्रीयुक्त लक्ष्मीनारायण
पण्डित इसटाम्प मुन्शीजी की इच्छा से

श्रीविष्णुनारायण पण्डित ने मुद्राङ्कित करवाया ।

मोल कम्पनी सिक्का आठ आना ॥
यह ग्रंथ जिनको लेने की वासना होवे उन्हें महानगर
कलिकत्ते बांसतले की गली ३० संख्या इस यन्त्रालय में मिलेगी
सम्बत् १९०३ । पौष सुदी ईकम ॥

कहीं कहीं छापे की अशुद्धि भी रह गई। जैसे 'जड़ावू तोड़ों की जोड़ी'। पुस्तक का अंत भी इस प्रकार किया गया है–

'* शुभमस्तु सर्वजगताम् *

यह कहानी बहुत दिन पहिले मुनशी हरी राम पण्डित जी ने देवनागरी अक्षर में छापी थी पर अब नहीं मिलती और बहुत लोगों को ठेठ हिन्दी बोली में इन दिनों कहानी पढ़ने की चाह रहती है इसलिए मुनशी जी की मूल कहानी को दूसरी बेर छ सौ चालीस पुस्तक छपवाया।'

इस कहानी को तीसरी बार लखनऊ के लामार्टिनिएर कॉलेज के प्रधानाध्यापक मिस्टर शिंट ने बंगाल एशाटिक सोसाइटी के जर्नल के सन् १८५२ के २१ वें भाग में अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित किया था। कहानी फारसी अक्षरों में छपी थी और अपूर्ण थी। कलकत्ते के बिशप्श कौलेज के प्रोफेसर रेवरेंड स्लेटर ने २४ वें भाग में इसे पूरा किया। मि० शिंट ने इस पुस्तक पर अपनी यह सम्मति दी थी कि यह हिन्दी शब्दों तथा महाविरों का कोष है और दूसरे इससे इनके प्रयोग का ठीक ज्ञान प्राप्त होता है।

इसके अनन्तर सन् १८७४ ई० में राजा शिवप्रसाद के गुटका के तीसरे भाग में यह 'कहानी ठेठ हिन्दी में' के नाम से प्रकाशित हुई। इसमें इन्होंने शीर्षक और कहानी सबको एक में मिला दिया है और कुछ घटाया बढ़ाया भी है। वाक्ययोजना में भी समयानुकूल कुछ अदल बदल कर दिया है।

इस संस्करण के बाद सन् १६०५ ई० में लखनऊ के ऐंग्लो ओरिएंटल प्रेस ने इस कहानी को 'उदैभान चरित' के नाम से प्रकाशित किया। इस पर संपादक या प्रकाशक किसी का

नाम नहीं दिया है। इसकी एक प्रति सभा के पुस्तकालय में है और इस प्रति की प्रशंसा भी सभा के रिपोर्ट में हो चुकी है। इसका संपादन सोसाइटी के जर्नल तथा गुटका और एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर हुआ है। आरंभ का कुछ अंश छोड़ दिया गया है जिसमें ईश्वर की स्तुति है। यह धर्मांधता के कारण हुआ ज्ञात होता है।

अंत में सन् १९२५ ई० में सभा का संस्करण प्रकाशित हुआ जिसके संपादक हिंदी के एक प्रसिद्ध दिग्गज विद्वान हैं। इसमें अट्ठारह पृष्ठ की भूमिका में इंशा का हिंदी-साहित्येतिहास में स्थान निश्चित किया गया है, पर कहानी का पाठ केवल दो उर्दू-प्रतियों के आधार पर ठीक किया गया है। इससे ठीक उर्दू न पढ़ सकने के कारण इसमें बहुत अशुद्धियाँ रह गई हैं। दोनों के पाठ मिलाने ही से सब आप स्पष्ट हो जाएगा। इनके सिवा लीथो में भी कई संस्करण निकल चुके हैं जिन में एक सचित्र भी था।

उर्दू साहित्य का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि उसके औपन्यासिक अंग का इतिहास बहुत प्राचीन नहीं है और प्रायः इसी के समकालीन है। साथही यह भी कहा जा सकता है कि मौलिकता की दृष्टि से यह ठेठ हिंदी की कहानी उर्दू की मौलिक कहानियों से प्राचीनतर है। उर्दू की आरम्भिक कहानियाँ फारसी या फारसी द्वारा संस्कृत कहानियों की अनुवाद मात्र हैं इस लिए एक मुसलमान सज्जन के उर्दू में न लिखकर हिंदी में मौलिक कहानी लिखना उस समय भाषा के प्रचार के आधिक्य का द्योतक है। इस कहानी के लिखने के समय 'इंशा' नवाब अवध के क्रोधानल में पड़ चुके थे और इस लिए किसी आश्रयदाता को खुश करने के बदले सर्व-

साधारण के लिए यह कहानी उन्होंने 'ठेठ हिंदी' में लिखना उचित समझा था।

मौलवी सैयद अफ़ज़लुद्दीन अहमद ख़ाँ 'शहबाज़' अज़ीमाबादी अपनी पुस्तक "फ़िसानए खुर्शेदी" की भूमिका में लिखते हैं कि 'हुस्नो इश्क की जितनी क़दीम तसनीफें हैं उनमें गालिबन् कोई भी नापाक ख्यालात और दूर अज़ अक्ल मंसूबों से खाली नहीं।......उनसे आलमे इनसानी को सिवा ज़रर के कोई बड़ा फायदः हासिल नहीं होता।' ये आक्षेप उपन्यासों ही पर समझने चाहिए क्योंकि उसी पर मौलवीसाहब लिख रहे हैं। इन आक्षेपों में यह कहानी कम-से कम अश्लीलता से परे है। एक शब्द 'रंडी' अवश्य कानों में खटकता है जिस पर आगे विचार किया जाएगा। असंभव घटनाओं का समावेश तो अवश्य है और ऐसा पुराने उपन्यासों में प्रायः मिलता है। उर्दू की मसनवियों तथा पुरानी प्रेम कहानियों के कथावस्तु यदि संक्षेप में लिखे जायँ तो उनका सार यही निकलेगा कि अकस्मात् मिलने से प्रेमोत्पत्ति हुई, जादू आदि के ज़ोर से पशु बनाकर या ऐसीही घटना से विरह हुआ और फिर दोनों मिल गए। वैसीही कथावस्तु इस कहानी में है जो, यही कहना चाहिए कि, विशेष रोचक नहीं है। तात्पर्य यह कि घटना-संगठन बिलकुल साधारण है।

अब देखना चाहिए कि इनकी वर्णनशैली कैसी है। इतना तो पहिले ही कह देना चाहिए कि, जैसा कि लिखा भी जा चुका है, यह हिंदी की रचना उर्दू के कवि तथा फारसी अरबी के विद्वान द्वारा हुई है जिससे कोई भी परिपक्क बुद्धि का पुरुष इसमें भाषा का चमत्कार या विचार भाव आदि के प्रकटीकरण में प्रौढ़ता पाने की आशा नहीं करेगा। यह कुशल

चित्रकार द्वारा सिला वस्त्र सा है। प्राकृतिक वर्णन तो नाम को भी नहीं है। स्त्री पुरुष के शृङ्गारादि का वर्णन भी शिथिल और साधारण कोटि का है। विवाहादि की तैयारी का वर्णन कई पृष्ठों में कर डाला है पर वास्तव में उन सब को पढ़ने पर किसी प्रकार की तैयारी का चित्र आँखों के सामने नहीं खड़ा होता प्रत्युत वाग्जाल मात्र समझ पड़ता है। विरहवर्णन में करुण रस नाम मात्र को है। सारांश यह कि यह कहानी खिलवाड़ में लिखी गई थी और केवल खिलवाड़ मात्र है। इसका महत्व केवल इसकी प्राचीनता में है।

इन्होंने आरंभ में लिखा है कि 'गँवारीपन न आ जाय' पर बहुत से शब्द जैसे पसेरियन, जेंवर आदि अब पढ़ने में ग्रामीण मालूम होते हैं। रागों, बाजों, नावों आदि की कहीं कहीं सूची सी दे डाली है। इस कहानी के प्रयुक्त शब्दों के पढ़ने से यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि आज से सवासौ वर्ष पहिले 'भले लोग अच्छों से अच्छे' किस प्रकार उच्चारण करते थे और उनकी भाषा कैसी रहती थी। इससे यह कहानी भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी महत्व की है, क्योंकि यह हिंदी बोलनेवाले समाज से बाहर के एक पुरुष द्वारा केवल उनकी भाषा के मनन करने पर लिखी गई है।

एक शब्द लालटैन का इस कहानी में प्रयोग हुआ कहा जाता है, जिसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध है। चाहे जो हो वह 'हिंदवी छुट' अवश्य है इस लिए इसका प्रयोग कम से कम 'इंशा' ने न किया होगा और केवल उर्दू लिपि की कृपा ही ने दूसरे शब्द को यह शब्द बना डाला है। उर्दू में लालपटों और लालटेनों लिखकर बिंदियाँ निकाल दिया जाय तो दोनों का स्वरूप ठीक एक सा रहेगा, जो इस भ्रम का कारण है।

इस शब्द का उसी अर्थ में उसके आगे दो तीन बार प्रयोग हुआ है पर वहां वे लालपटों ही पढ़े गए हैं। इसका अर्थ यदि लाल कपड़ा ही किया जाय तो 'लालपटों की झमझमाहट रातों को' कैसे दिखाई देगी और उनमें से 'हथफूल, फुलझड़ी, जाही, जुही, कदम, गेंदा, चमेली, इस ढब से छूटने लगे। और पटाखें' कैसे उछल उछल फूटेंगे। यह उसी प्रकार की कोई खिलौने सी चीज़ है जैसी आजकल भी मेलों में रंगीन कागज़ आदि की बनी हुई मिलती है जिसमें रोशनी बाल कर लोग सजावट के लिए टाँगते हैं। यह मुसल्मानों में अब भी विशेष प्रचलित है।

'रंडी' शब्द का इस कहानी में चार बार प्रयोग हुआ है। प्रथम दो रानी केतकी के साथ की झूलने वालियों की लिए, तीसरी बार इंद्र की अप्सरा के लिए और चौथी बार मदन-बान के लिए खिलवाड़ में प्रयुक्त हुआ है। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि यह शब्द अश्लील अर्थ में न लेकर खिलवा-ड़िन (सं० रन=क्रीडा करना) के अर्थ में प्रयोग किया गया है।

'आतियाँ जातियाँ जो साँसें है', 'घरवालियाँ बहलातियाँ हैं', 'चुलबुलियाँ,' नाचती गाती बजाती कूदती फाँदती धूमें मचातियाँ अँगड़ातियाँ जँभातियाँ उँगुलियाँ नचातियाँ और ढुली पड़तियाँ थीं।' इन उद्धरणों से यह मालूम होता है कि कृदंत क्रियाओं तथा विशेषणों में भी उस समय बहुवचन सूचक चिन्हों का प्रयोग होता था पर यह लेखक की इच्छा पर निर्भर था। अंतिम उद्धरण के कुछ क्रियाओं में ऐसे सूचक चिन्ह बनाए गए हैं और कुछ में नहीं। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिए कि ऐसे चिन्ह केवल स्त्रीलिंग ही में प्रयुक्त क्रियाओं और विशेषणों में लगाए जाते थे। इस ग्रंथ में

संगृहीत १८ तथा १९ वें ग़ज़ल में ऐसे प्रयोग पठनीय हैं। उर्दू-साहित्य के आरम्भिक काल में इस प्रकार के प्रयोग बहुत पाए जाते हैं जैसे—

आँखें जो खुल गईं वही रातें हैं कालियाँ।
क्या ख़ाक सो के हसरतें दिल की निकालियाँ॥
बारहा वादों की रातें आइयाँ।
तालओं ने सुबह कर दिखलाइयाँ॥

प्रो० आज़ाद आबेहयात पृ० १३२ पर लिखते हैं कि 'इस काल में भूत कालिक बहुवचन स्त्रीलिंग की दोनों क्रियाओं में बहुवचन होता था, जैसे औरतें आतियाँ थीं और जातियाँ थीं'। उस काल में हिंदी के जो विशेषण उर्दू में काम आते थे उनमें भी बहुवचन के चिन्ह लगाते थे जैसे कड़ियाँ, एकों इत्यादि। इंशा के समय से ऐसे प्रयोगों का बहिष्कार होने लगा था।

इस कहानी की भाषा ठेठ हिन्दी है पर उर्दू वाक्ययोजना की शैली ही में लिखी गई है। हिंदी-साहित्य-दुर्ग के फाटक पं० केदारनाथ पाठक का कथन है कि इस कहानी का किसी समय इतना प्रचार था कि इस को कुछ लोग यादकर लय के साथ आल्हा की भाँति अन्य लोगों को सुनाया भी करते थे तथा इस प्रकार जीविकोपार्जन करते थे। इस कहानी के विषय में इतना ही लिखना अलम् है और इस रूप में यह हिन्दी साहित्य प्रेमियों के सन्मुख उपस्थित की जाती है।

काशी
विजयादशमी
सं० १९८५

विनीत
व्रजरत्नदास

सैयद इंशा का जीवनचरित्र

[उपक्रम]

किसी कवि ने कैसी खूबसूरती से कहा है कि—

यह चमन योंही रहेगा और हज़ारों जानवर ।
अपनी अपनी बोलियाँ सब बोलकर उड़ जाएँगे ॥

ठीक ही है, यह साहित्यरूपी सुन्दर वाटिका ज्यों की त्यों बनी रहेगी और सहस्रों पक्षी, जिनमें कोकिल, पिक आदि से मीठे बोलनेवाले और कौए से काँव काँव करनेवाले भी रहेंगे सब अपनी अपनी तान अलाप कर चले जाएँगे । कोई करे क्या ! किसी का वश नहीं चलता ।

लाई हयात आए क़ज़ा ले चली चले ।
अपनी खुशी न आए न अपनी खुशी चले ॥

बस, यह भी एक सांसारिक दृश्य मात्र है जिसके नाट्य पात्र रङ्गस्थल पर आते और चले जाते हैं और दर्शकगण भी तालियाँ पीटते अपने अपने घर चले जाते हैं । उनमें से अनेक दर्शक यह भी विचारते होंगे कि एक दिन उन्हें भी इस महान रङ्गस्थल पर से चला जाना होगा । उन्हीं दर्शकों

में से एक ने कहा भी है कि 'देखत हमारे चले जात हैं सबैही जन देखत सबहि के हमहुँ चले जाएँगे ।'

वस्तुतः अनन्त काल से ऐसाही होता रहा है और होता रहेगा तथा इसके लिए शोक करना वृथा है । परन्तु इन जाने वालों में कभी कभी ऐसे पुरुष भी होते है कि शताब्दियाँ व्यतीत होने पर भी लोग उनके विचारों और कृतियों की याद किया करते हैं । ऐसेही जीवों का इस संसार रूपी रङ्गस्थल पर आना सार्थक है जो अपना कुछ स्मारक छोड़ जाते हैं । ऐसेही पुरुषों में सैयद इंशाअल्लाह खाँ 'इंशा' भी होगए हैं जिन्हें उर्दू साहित्यवाटिका का बुलबुले–हजारदास्ताँ समझना चाहिए । इनका जीवनचरित्र पढ़ जाने पर यह ज्ञात हो जाएगा कि इन्हें हज़ारदास्ताँ लिखना उचित है या नहीं । इंशा बुलबुल के समान कितने प्रकार के नए नए राग निकालते थे और इन्हीं कारणों से ये उर्दू के अमीर खुसरो माने जाते हैं ।

[आरंभिक जीवन]

सैयद इंशाअल्लाह खाँ के पिता हकीम मीर माशाअल्लाह खाँ नजफ़ी जाफ़री दिल्ली के रहनेवाले थे और कविता में अपना उपनाम 'मसदर' रखते थे। इनके पूर्वज कुछ दिनों पाहिले समर-कंद से आकर काश्मीर में बस गए थे पर अमीरुल्उमरा नवाब जुल्फ़िक़ार खाँ के समय में मीर माशाअल्लाह खाँ काश्मीर से

दिल्ली चले आए और यहाँ रह गए। नवाब ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ का दिल्ली में सं० १८६५ से सं० १८७० तक दौरादौर था और इसी बीच ये दिल्ली आए होंगे। कुछ समय के अनन्तर ये दिल्ली के बादशाह के दरबारी हकीम हो गए क्योंकि इनके पूर्वजों में भी कई इस पद पर नियुक्त हो चुके थे और झंडा भी मिला था। इनकी कविता के उदाहरण लीजिए—

खुदा करे कि मेरा मुझसे मेहवाँ न फिरे।
जहाँ फिरे तो फिरे पर वो जानेजाँ न फिरे॥
एक दुज़दीदः निगह से जो छिपाई आँखें।
चोर जख्मों में पड़े दिल की भर आईं आँखें॥

मीर माशाअल्लाह ख़ाँ बड़े मिलनसार, सङ्कोची और उदार पुरुष थे। जब चगत्ताई साम्राज्य अत्यन्त निर्बल हो गया तब इन्हें मुर्शिदाबाद जाना पड़ा और वहाँ के नवाब के दरबार में भी यह बड़े सम्मान के साथ रहे। मुर्शिदाबाद ही में इंशाअल्लाह ख़ाँ का जन्म हुआ और पुराने समय के रईसों के पुत्रों की तरह इन्हें भी अच्छी शिक्षा मिली। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' सैयद इंशा की मेधाशक्ति प्रबल थी, जिससे इन्हों ने बहुत जल्द पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर ली। इनके समान प्रतिभाशाली मनुष्य संसार में बहुत कम पैदा होते हैं और वे जिस विषय की ओर झुके पड़ते हैं

उसमें अपना नाम अमर कर जाते हैं। इनके चञ्चल स्वभाव में चुलबुलाहट की मात्रा अधिक थी और इनके भावुक हृदय का झुकाव भी कविता की ओर था इसलिए ये इसी ओर झुक पड़े।

इंशा ने अपनी कविता किसी से संशोधित नहीं कराई पर कुछ दिनों तक आरम्भ में अपने पिता को दिखा लिया करते थे। विद्या के सभी मार्ग ऐसे हैं कि उनमें 'मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं बिरञ्चि सम।' परन्तु इन सब में कविता का मार्ग निराला है जहाँ गुरु और शिष्य दोनों ही प्रतिभाशाली होने चाहिए और तभी दोनों के परिश्रम सार्थक हो सकते हैं। जिस प्रकार अच्छे गुरु का मन्द बुद्धि वाले शिष्य पर परिश्रम करना व्यर्थ जाता है उसी प्रकार मेधावी शिष्य कुकवि गुरु के फेर में पड़कर बेढंगा रास्ता पकड़ कर अपना श्रम निष्फल करता है। इसलिए यदि प्रतिभाशाली शिष्य अपने पुरुषार्थ के सहारे कोई नया मार्ग निकाल लेता है तो वह कम से कम बुरे मार्ग से अच्छा ही रहता है। अस्तु, जब बङ्गाल के नवाब सिराजुद्दौला मारे गए और वहाँ गड़बड़ मचा तब सैयद इंशा मुर्शिदाबाद से दिल्ली चले आए। उस समय दिल्ली के केवल नाम मात्र के सम्राट् शाहेआलम द्वितीय स्वयं कवि थे। बादशाह ने सैयद इंशा को बड़ी प्रतिष्ठा के साथ अपने दरबार में रख लिया और ये भी

किस्से कहानी के साथ कविताएँ सुनाकर बादशाह के कृपा पात्र बन गए।

[शाहेआलम के दरबार में]

दिल्ली के प्रसिद्ध कवि मीर तक़ी 'मीर' और मिर्ज़ा रफ़ीअ 'सौदा' का समय बीत चुका था परन्तु तब भी अनेक वृद्ध कवि वहाँ थे जिनमें मीर दर्द के शिष्य हकीम सनाउल्ला 'फ़िराक़', हकीम कुदरतुल्ला खाँ 'क़ासिम', मीर के शिष्य मियाँ शकेबा, शाह हिदायत, सौदा के शिष्य मिर्ज़ा अज़ीम बेग 'अज़ीम', मीर क़मरुद्दीन 'मिन्नत', शेख़ वलीउल्ला 'मुहिब' आदि मुख्य थे। ये इस नए आगन्तुक को बादशाह का कृपापात्र होते देखकर उससे द्वेष करने लगे और उसकी कविता पर प्रशंसा करना दूर रहा खोज खोज कर दोष निकालने लगे। वे वृद्ध पुराने लकीर के फकीर हो रहे थे और इधर इनकी उभड़ती जवानी कविता में नई काट छाँट तथा व्यङ्ग्य आदि का समावेश कर रही थी। उन लोगों को यह नहीं भाया और वे द्वेष रूपी चश्मे लगा कर कठोर आलोचना करने में लग गए।

इनमें मिर्ज़ा अज़ीम बेग मिर्ज़ा सौदा के शिष्य और वृद्ध कवि होने के कारण अपने को बहुत बड़ा कवि समझते थे और इंशा के प्रति द्वेष रखने में सब से बढ़कर थे। एक दिन वह मीर माशाअल्लाह खाँ के पास गए और एक ग़ज़ल उन्हें

सुनाई। सैयद इंशा भी वहीं थे और उन्हों ने भी उसे सुना। यद्यपि वह ग़ज़ल बहरे रजज़ में कही गई थी पर उसके कुछ शेर बहरे रमल में जा पड़े थे। सैयद इंशा इसे ताड़ गए और उसकी बहुत प्रशंसा करके कहा कि आप इसे अवश्य मुशायरः अर्थात् कविसभा में पढ़िए। मिर्ज़ा साहब भी बहुत प्रसन्न हुए और दूसरी कविसभा में उन्होंने उस ग़ज़ल को पढ़ ही डाला। यह कविसभा अवध के नवाब शुजाउद्दौला के पुत्र नवाब अमीनुद्दौला मुईनुल्मुल्क नासिरजङ्ग के यहाँ हुई थी जो कविता में अपना उपनाम अमीर रखते थे और मिर्ज़ा मेंढू के नाम से प्रसिद्ध थे। यह कुछ दिनों के लिए दिल्ली में आकर ठहरे हुए थे और बहुधा इनके यहाँ इस प्रकार का जमघटा रहता था क्योंकि यह कवियों और रईसों की बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। सैयद इंशा वहां मौजूद ही थे, उन्होंने ग़ज़ल सुनतेही तक़तीअ करने के लिए कहा तब मिर्ज़ा अज़ीम को अपनी भूल ज्ञात हुई और वह उस भरी सभा में कैसे लज्जित हुए होंगे और उन पर क्या बीती होगी यह वेही जानते होंगे। परंतु इंशा ने इस विषय को लेकर उन सब कवियों पर एक साथ ही हाथ फेर दिया और एक मुख़म्मस भी पढ़ा जिसका मतलब यह था—

गर तू मुशायरः में सबा आजकल चले।
कहियो अज़ीम से कि ज़रा वह सँभल चले॥

इतना भी हद से अपने न बाहर निकल चले ।
पढ़ने को शब जो यार ग़ज़ल दर ग़ज़ल चले ॥
बहरे रजज़ में डाल के बहरे रमल चले ॥

मिर्ज़ा अज़ीम बेग ने यद्यपि घर पर जाकर इसी मुख़म्मस की तरह में एक लम्बा मुख़म्मस बनाकर अपना क्रोध शान्त किया परन्तु वह 'युद्धान्तेरण मुष्टिकाघातः' के समान था । उदाहरण के लिए दो चार बंद सुनिए—

वह फ़ाज़िले-ज़मानः हो तुम जामए-उलूप ।
तहसीले-सर्फ़ो-नहो से जिनकी मची है धूम ॥
रमलो रियाज़ी हिकमतो हैयत जफ़र नजूम ।
मन्तिक़ बयान मानी कहें सब ज़मीं को चूम ॥
तेरी जबाँ के आगे न देहकाँ का हल चले ॥

एक दो ग़जल के कहने से बन बैठे ऐसे ताक़ ।
दीवान शायरों के नजर से रहे ब ताक़ ॥
नासिर अली नजीरी की ताक़त हुई है ताक़ ।
हरचन्द अभी न आई है फ़हमीदो ज़ुल्फ़ो ताक़ ॥
टँगड़ी तले से उर्फ़िओ क़ुदसी निकल चले ॥

था रोज फ़िक्र में कि कहूँ मानिओ मिसाल ।
तजनीसो हम रिआयते लफ़्ज़ीओ हम खियाल ॥

फ़र्क़े रजज रमल न लिया मैंने गो सँभाल ।
नादानी का मेरे न हो दाना को एहतमाल ॥
गो तुम बक़द्रे फ़िक्र यही कर हमल चले ॥

मौज़ूनिओ मआनी में पाया न तुमने फ़र्क़ ॥
तबदीले बहर से हुए बहरे खुशी में ग़र्क़ ।
रौशन है मिसले मेह यह अज ग़र्ब ता बशर्क़ ॥
शहज़ोर अपने ज़ोर में गिरता है मिसले बर्क़ ।
वह तिफ्ल क्या गिरेगा जो घुटनों के बल चले ॥

शाहेआलम बादशाह भी कवि थे और वे अपनी कविता बहुधा कविसभाओं में पढ़े जाने के लिए भेजते थे । बादशाह की कविता भी बादशाही होती थी जिसकी कुछ शाअर हँसी उड़ाते थे । सैयद इंशा ने यह बात बादशाह के कान तक पहुँचा दी कि अमुक अमुक मनुष्य आपकी कविता की हँसी लेते हैं । बादशाह का यद्यपि उस समय तक भी दिल्ली में बहुत कुछ दबदबा और प्रभाव था परन्तु उन्होंने किसी को कुछ न कहकर केवल अपनी ग़ज़ल भेजना बन्द कर दिया । इस बात का भी पता सबको मिलगया और सब दूसरे कवि-सभा में कमरें कसकर पहुँचे । इनके प्रतिद्वंद्वियों ने अपने सशस्त्र साथवालों को घात में लगा रखा था और मित्रों तथा भाई बन्दों को कविसभा में साथ लेगए थे । वलीउल्ला 'मुहिब'

ने यह क़ितअ:पढा—

मजलिस में चुके चाहिए झगड़ा शुअरा का।
ऐसे ही किसी साहबे तौक़ीर के आगे॥
यह भी कोई दानिश है कि पहुँचे य कुज़ाया।
अकबर तईं या शाहे जहाँगीर के आगे॥

मिर्ज़ा अज़ीमबेग ने कहा कि मैंने अपने लिए केवल अपने गुरु के एक शैर पर सन्तोष किया है जिसपर यह बन्द अभी तैयार होगया है—

'अज़ीम' अब गो हमेशः से है यह शैर कहना शेआर अपना।
तरफ़ हर एक से हो बहस करना नहीं है कुछ इफ़्तख़ार अपना॥
कई सखुनबाज़ खण्डगोयों में हो न हो एतबार अपना।
जिन्हों के नज़रों में हम सुबुक हैं दिया उन्हीं को वक़ार अपना॥
अजब तरह की हुई फ़राग़त गधों पै डाला जो बार अपना॥

सैयद इंशा ने इन सब कटाक्षों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और अपनी ग़ज़ल जो लाए थे पढ़कर सुनाई। यह ग़ज़ल फ़ख़्रियः थी अर्थात् स्वप्रशंसा में लिखी गई थी जिसका एक एक शैर सुनने वालों के हृदय पर चोट करता था।

एक तिफ़्ले दबिस्ताँ है फ़लातूँ (१)मेरे आगे।

---

(१) फ़लातूँ-इसका जन्म सं० ३७० वि० पू० में हुआ था और ये एथेन्स नगर के रहने वाले थे। यह सुकरात के शिष्य

क्या मुहँ है अरस्तू (१)जो करे चूँ मेरे आगे ॥
क्या माल भला कस्रफ़रेदूँ मेरे आगे।
काँपे है पड़ा गुम्बदे गर्दूं मेरे आगे॥
मुर्गाने उला अजनए मानिंद कबूतर।
करते हैं सदा इजज़ से गूँ गूँ मेरे आगे॥
मुँह देखो तो नक्क़ारचिए पीले फ़लक भी।
नक्क़ार बजाकर कहे दूँ दूँ मेरे आगे॥
हूँ वह जबरूत कि गरोहे हुकमा सब।
चिड़ियों की तरह करते हैं चूँ चूँ मेरे आगे॥
बोले है यही ख़ामः कि किस किस को मैं बाँधू।
बादल से चले आते हैं मज़मूँ मेरे आगे॥

थे और जब वे सं० ३४२ वि० पू० में मारे गए तब ये भी देश छोड़ कर भागे। दस बारह वर्ष तक मिश्र, इटली आदि स्थानों में भ्रमण करने के अनंतर ये लौटे और सं० ३३१ वि० पू० में एथेंस में स्कूल स्थापित किया। ये प्राचीन ग्रीस के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान थे। इनकी मृत्यु सं २९० वि० पू० में हुई।

(१) अरस्तू—इनका जन्म सं० ३२७ वि० पू० चालसिडाइस के स्टागीरा ग्राम में हुआ था। सत्तरह वर्ष की अवस्था में एथेंस आए और फलातूँ के शिष्य हुए जिसकी मृत्यु पर अटार्न्यूस चले गए। वहाँ से बुलाकर फिलिप ने सिकंदर का शिक्षक नियुक्त किया जिसकी सं० २७८ वि० पू० में राजगद्दी होने पर यह एथेंस लौट आए और अपना स्कूल स्थापित किया। इसकी मृत्यु सं० २६५ वि० पू० में हुई।

मुजरे को मेरे खुसरवो पर्वेज़ हों हाज़िर ।
शीरीं भी कहे आके बला लूँ मेरे आगे ॥
क्या आके डरावे मुझे ज़ुल्फ़े शबे यलदा ।
है देव सुफ़ेदे सहरी जूँ मेरे आगे ॥
वह मारे फ़लक काहेकशाँ नाम है जिसका ।
क्या दख़्ल जो बल खाके करे फूँ मेरे आगे ॥

इनके अन्तर जब हकीम मीर कुदरतुल्ला ख़ां क़ासिम की पारी आई तब उन्होंने कहा कि सैयद साहब (इंशाअल्लाह ख़ाँ) ज़रा अलफ़ील मालफ़ल को भी मुलाहज़ा फर्माइए । नवाब साहब ने जिनके यहाँ यह कविसभा हुई थी, यह समझकर कि कहीं इंशा की हजो न कही हो और उसके पढ़ने से आपस में विरोध अधिक हो जाय इसलिए दोनों से मेल कराने के लिए खड़े हुए। इंशा भी उदारता से उठकर हकीम साहब से मिले और इस प्रकार सब में सन्धि होगई ।

[लखनऊ को प्रस्थान]

यद्यपि यह दिल्ली के बादशाह शाहेआलम के दरबार में बड़ी प्रतिष्ठा के साथ रहते थे पर शाहेआलम शतरञ्ज के बादशाह के समान होरहे थे और दूसरों के हाथों के कठपुतली थे । सं० १८४५ वि० में गुलाम क़ादिर ने, जो जाबिताख़ाँ रुहेला का पुत्र था, दिल्ली पर अधिकार

करके शाहेआलम को गुप्त कोष बतलाने के लिए अन्धा कर डाला । इंशा का ऐसे बादशाह से धन की आशा करना व्यर्थ था । यद्यपि इन्होंने कुछ दिनों तक बादशाह से माँग कर काम चलाया पर इस प्रकार कितने दिन चल सकता था । इधर लखनऊ के नवाब आसफ़ुद्दौला के दान की धूम चारों ओर मची हुई थी । यह मसल मशहूर होगई थी कि 'जिसे न दे मौला, उसे दे आसफ़ुद्दौला' । वहाँ की प्रजा भी गुणग्राहक थी, इसलिए जो गुणी उधर गए वे फिर नहीं लौटे।

अन्त में सैयद इंशा को भी लखनऊ जाना पड़ा । वहाँ पहुँचते ही कविसभाओं में इनका ग़ज़ल सुनकर लोग फड़क उठे और बहुत जल्द यह मिर्जा सुलेमान शिकोह के दरबार में पहुँच गए । यह शाहेआलम के पुत्र थे और स्वयं कवि थे । इनके यहाँ कवियों का सर्वदा जमाव रहता था जिनमें मुसहिफी, जुरअत, मिर्जा कतील आदि मुख्य थे । सैयद इंशा चगत्ताई वंश के पुराने सेवक थे जिस नाते और अपने गुणों से झट मिर्जा सुलेमान शिकोह के कृपापात्र बनगए । मिर्जा सुलेमान शिकोह पहले मुसाहिफी से अपनी कविता का संशोधन कराते थे परन्तु इनके पहुँचने पर इनकी कविता की शैली आदि ऐसी रुची कि इन्हीं से संशोधन कराने लगे ।

जब शाहजादा ने मुसहिफी का वेतन भी कुछ कम कर

दिया तब उन्होंने ये शैर कहे—

चालीस बरस का है चालीस के लायक़ ।
था मर्द मुअम्मर कहीं दस बीस के लायक़ ॥
ए वाए कि पच्चीस से अब पाँच हैं अपने ।
हम भी थे किन्हीं रोजों में पच्चीस के लायक़ ॥
उस्ताद का करते हैं अमीर अब कि मुक़र्रर ।
होता है जो दरमाहः कि साईस के लायक़ ॥
चारः के लगाने से हुआ दो का इजाफ़ः ।
फिर वह न जले जी में कि हो तीस के लायक़ ॥

इसके अनन्तर भी जाना आना बना हुआ था पर एक दिन शेख साहब ने मिर्जा सुलेमान शिकोह के जलसे में यह ग़जल पढ़ी जिसके कुछ शैर ये हैं—

जोहरः की जो आई कफ़े हारूत में उँगली ।
की रश्क ने जा दीदए मारूत में उँगली ॥
बिन दूध अँगूठ का तरह चूसे है कोदक ।
रखती है तसर्रुफ अजब एक कूत में उँगली ॥
ग़र्क़ः के तेरे हाल पै अज बहरे तअस्सुफ ।
हर मौज से थी कल दहने हूत में उँगली ॥
मेहदी के यह छल्ले नहीं पूरों प बनाए ।
है उसकी हर एक हलक़ए याक़ूत में उँगली ॥

शहतूत है या सानेअ आलम ने लगादी ।
शीरीं के यह शाखे शजरे तूत में उँगली ।।
था मुसाहिफी यह मायले गिरियः के पस अर्ज मर्ग ।
थी उसकी धरी चश्म पै ताबूत में उँगली ।।

इसी तरह में सैयद इंशा ने भी गजल़ कहा जिसका प्रथम शैर यों है:—

देख उसकी पड़ी खातिमे याकूत में उँगली ।
हारूत ने की दीदए मारूत में उँगली ।।

मुसहिफी के जाने पर लोगों ने उसके ग़जल को खूब बिगाड़ा, जिसके उदाहरण के लिए यह शैर पढ़िए—

था मुसहिफी काना जो छिपाने को पस अज मर्ग ।
रखे हुए था आँख पै ताबूत में उँगली ।।

जब शेख मुसहिफी को इसका पता लगा तब वृद्ध होने पर भी आप बिगड़ गए और एक गजल स्वाभिमान से भरी हुई एक जलसे में पढ़ी जिसके कुछ शैर दिए जाते हैं—

मुद्दत से हूँ मैं सरखुशे सहबाए शाएरी ।
नादाँ है जिसको मुझसे है दावाए शाएरी ।।
मैं लखनऊ में जमजमः संजाने शैर को ।
बर्सों दिखा चुका हूँ तमाशाए शाएरी ।।

फबता नहीं है बज्मे अमीराने-दह्र में ।
शायर को मेरे सामने गौगाए-शाएरी ॥
एक तुर्फः ख़र से काम पड़ा है मुझे कि हाय ।
समझे है आपको वह मसीहाए शाएरी ॥

इस प्रकार के और भी गजल कहे जिस पर सैयद इंशा को यह ध्यान में आया कि मैं भी शाहजादे के हर जलसे में रहता हूँ और मुसहिफी से मित्रता भी है। कहीं वह कुछ और न समझें, इस विचार से पालकी पर सवार हो उसके घर पर गए और कहा कि भई, जलसे में इस प्रकार बातचीत हुई थी, तुम्हें मेरी ओर से कुछ मलाल न होना चाहिए। शेख मुसहिफी ने बेपरवाही से कहा कि मुझे ऐसी बातों का ख्याल भी नहीं और अगर तुम कहते ही तो क्या था। सैयद इंशा को यह अन्तिम वाक्य खटका और घर आते ही उन्हों ने बहरे तवील में इनकी हजो कही।

[इंशा और मुसहिफी की दो दो चोटें]

इन्हीं दिनों एक कविसभा में एक तरह की गजलें पढ़ी गईं जिनमें मुसहिफी ने आठ शैरों की एक गजल कही:—

सर मुश्क का है तेरा तो काफ़ूर की गर्दन ।
नै मूए परी ऐसी न यह हूर की गर्दन ॥
मछली नहीं साअद में तेरे बलकि निहाँ है ।
वह हाथ में माहीए सक़नक़ूर की गर्दन ॥

यों मुर्गे दिल जुल्फ के फंदे में फँसा है ।
जों रिश्तए सैयाद में असफूर की गर्दन ॥
दिल क्यों कि परी हूर की फिर उसपै न फिसले ।
सानेअ ने बनाई तेरी बिल्लूर की गर्दन ॥
इक हाथ में गर्दन हो सुराही का मजा है ।
और दूसरे में साकिए मखमूर की गर्दन ॥
हर चन्द मैं झुक झुक के किए सैकड़ों मुजरे ।
पर ख़म न हुई उस बुते मगरूर की गर्दन ॥
क्या जानिए क्या हाल हुआ सुबह को उसका ।
ढलकी हुई थी शब तेरे रंजूर की गर्दन ॥
यों जुल्फ़ के हल्क़ः में फँसा मुसहिफी ए वाए ।
जों तौक़ में होवे किसी मजबूर की गर्दन ॥

इंशा ने इस ग़जल में अशुद्धियाँ निकालकर उस पर एक कि़तः लिख डाला । उनकी गजल के कुछ शेर उदाहरण के लिए दर्ज किए जाते हैं जिसे उन्हों ने वहीं इसी तरह में पढ़ा था और उसमें सोलह शेर थेः——

तोड़ूँगा खुमे बादए अंगूर की गर्दन ।
रख दूँगा वहीं काट के एक हूर की गर्दन ॥
क्यों साकिए खुर्शेद जबीं क्याही नशे हों ।
सब योंहीं चढ़ा जाँउ मए नूर की गर्दन ॥

आईनः का गर सैर करे शेख तो देखे।
सर खिर्स का मुँह खूक का लंगूर की गर्दन ॥
तब आलमे मस्ती का मजा है कि पड़ी हो।
गर्दन पै मेरे उस बुते मखमूर की गर्दन ॥
हासिद तो है क्या चीज करे क़स्द जो 'इंशा'।
तो तोड़ दे झट बलअमे बाऊर की गर्दन ॥

सैयद ने जब यह गजल पढ़ी, जिसके अन्तिम शेर के "बलअमे बाऊर' से शेख के बुढ़ापे पर भी चोट किया था, तब उनके एक शिष्य 'मुन्तज़िर' ने अपनी गजल में इंशा पर चोट की। उसका एक मिसरा है--

बाँधी दुमे लंगूर में लंगूर की गर्दन।

इंशा के गले में दुपट्टा रहता था, जिसका एक सिरा आगे और एक पीछे रहता था। सैयद ने उसी समय एक शेर और पढ़ा—

सफ़रः पै जराफ़त के जरा शेख को देखो।
सर लोन का मुँह प्याज का अमचूर की गर्दन ॥

शेख़ के बाल पक कर सफ़ेद हो गए थे और मुँह रक्त के जमने से प्याज़ी रंग का हो गया था। मुसहिफ़ी के शिष्यों में 'मुन्तज़िर' और 'गर्म' दो बहुत तेज़ थे और उन्होंने गुरु का हर तरह साथ दिया। ये दोनों नवाब के तोपख़ाने

में नौकर थे और एक मसनवी लिखकर उसका 'गर्म तमाँचः' नाम रखा था। सैयद इंशा ने शेख़ के ग़ज़ल पर जो क़िता लिखा था और उसका जो जवाब मुसहिफ़ी ने दिया था उसके कुछ अंश उद्‌धृत किए जाते हैं। दोनों अंशों के पढ़ने से दोनों के कटाक्षपूर्ण लेखन शैली की विभिन्नता साफ ज्ञात होगी। सैयद दूसरों के बनाने में एकही थे यद्यपि शेख़ ने भी अपने विचार अच्छी प्रकार प्रकट कर लिए हैं।

क़ितः हजो

सुन लीजे गोशे दिल से मेरे मुशफिक़ा यह अर्ज़ ।
मानिन्द बेद गुस्सः से मत थरथराइए ॥
बिल्फ़र्ज़ गो दुरुस्त हो लेकिन ज़रूर क्या ।
ख़्वाही न ख़्वाही उसको ग़ज़ल में खपाइए ॥
यह तो ग़ज़ब है कहिए ग़ज़ल आठ बैत की ।
और उसमें रूप ऐसे अनोखे दिखाइए ॥
यों ख़ातिरे शरीफ़ में गुज़रा कि बज़्म में ।
कुचला हुआ शरीफ़ः ग़ज़ल को बनाइए ॥
गर्दन का दख़्ल क्या है सक़नक़ूर में भला ।
साँडे की तरह आप न गर्दन हिलाइए ॥
उर्दू की बोली है यह भला खाइए क़सम ।
इस बात पर अब आपही मुसहिफ़ उठाइए ॥

इस रमज़ का यहाँ शुनवा कौन है भला।
अब भैरवी का टप्पा कोई आप गाइए॥

शेख़ का जवाब

मैं लफ्ज सक़नकूर मुजर्रद नहीं देखा।
ईजाद है तेरा यह सक़नकूर की गर्दन॥
यह लफ्ज मुशद्दद भी दुरुस्त आया है तुझसे।
ख़म होती है कोई मेरे बिल्लूर की गर्दन॥
यों सैकड़ों गर्दन तु गया बाँध तो क्या है।
सूझी न तुझे हैफ़ कि मज़दूर की गर्दन॥
खटराग यह गाया प तेरे हाथ न आई।
अफसोस कि इस तान पै तंबूर की गर्दन॥
वह शाह सुलेमाँ कि अगर तेग़े अदालत।
टुक खींचे तो दो हो वहीं फ़ग़फ़ूर की गर्दन॥
'ए मुसहिफ़ी' ख़ामुश बसखुन तूल न खिंच जाय।
याँ कोतः ही बेहतर सरे पुरशोर की गर्दन॥

शेख ने पहले सक़नकूर शब्द पर जो आलोचना की है, वह अशुद्ध है। यह यूनानी शब्द है, जो किसी जानवर का नाम है। इससे और मछली से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब कोई कविता से दिल का गुबार नहीं निकाल सका और इसमें इंशा की जीत रही तब शेख़ साहब के असंख्य शिष्यों ने

एक दिन इकट्ठे होकर स्वाँगें बनाईं और हजो बनाकर पढ़ते हुए इंशा के गृह की ओर चले। ये मार पीट करने को भी तैयार थे। सैयद साहब को जब इसका पता लगा तब उन्होंने झट फ़र्श बिछवाई, पान, इलायची आदि स्वागत का प्रबंध किया और जलपान की भी तैयारी की। जब प्रतिद्वन्द्वीगण पास आए तब साथ वालों सहित आगे बढ़कर स्वागत किया और प्रशंसा करते हुए साथ गृह पर लिवा लाए। सबको बिठाकर अपनी हजो पढ़वा कर सुनी, प्रसन्नता दिखलाई और खातिरदारी कर बिदा किया।

इसके प्रत्युत्तर में सैयद इंशा ने जो बारात निकाली थी वह भी बड़े मार्के की थी। बहुत सी हजोएँ तैयार कीं और लोगों को देकर हाथी, घोड़ों और तख्तों पर सवार कराया। एक भारी हाथी पर कुछ लोग हाथ में एक बड़ा गुड्डा और गुड़िया लिए दोनों को लड़ाते थे और हजो गाते थे, जिसका एक शेर यों है—

स्वाँग नया लाया है देखना, ए चर्ख़े कुहन।
लड़ते हुए आए हैं मुसहिफ़ी मुसहफ़न॥

इन सब कार्रवाइयों में मिर्जा सुलेमान शिकोह और दूसरे रईस इंशा का साथ लेते थे जिससे मुसहिफ़ी को दुःख होता था। अस्तु।

यद्यपि सैयद इंशा शाहजादा सुलेमान शिकोह और दूसरे रईसों के दरबार में सन्मान के साथ आते जाते थे पर सर्वदा अपनी उन्नति मार्ग की खोज में भी रहते थे। तफ़ज्जुल हुसेन ख़ाँ अल्लामः नवाब सआदतअली ख़ाँ के वज़ीर थे। इन्हें नवाब आसफुद्दौला कलकत्ते से लिवा लाए थे, जहाँ वे अँग्रेज़ों के यहाँ मुन्शी थे। यह अच्छे विद्वान थे और अंग्रेज़ी तथा लैटिन भी जानते थे। आसफुद्दौला ही ने इन्हें मन्त्री बनाया था और सं० १८५४ में उनकी मृत्यु पर जब वज़ीर अली नवाब हुआ तब सं० १८५५ में उसको गद्दी से उतारने और सआदत अली ख़ाँ को उस पर बिठाने में इन्हों ने भी प्रयत्न किया था। सैयद इंशा इनके यहाँ बहुधा जाया करते थे और वह भी इनकी योग्यता और अच्छे वंश के कारण प्रतिष्ठा करते थे। किसी दिन अल्लामः ने सआदत अली ख़ाँ से इंशा की बहुत प्रशंसा की जिस पर नवाब ने इन्हें लाने की आज्ञा दी। दूसरे ही दिन वह इंशा को साथ लिवा गए और उसी दिन बात चीत से नवाब को ऐसा प्रसन्न किया कि उन्हें इन्हीं की बात में मज़ा मिलने लगा। यह नवाब सआदत अली ख़ाँ के राजत्व के प्रथम वर्ष ही में दरबार पहुँचे होंगे क्योंकि उसी वर्ष ख़ाँ साहब की कलकत्ते से लौटने पर मृत्यु होगई थी।

[आशु कविता तथा विनोद के उदाहरण]

नवाब सआदत अली ख़ाँ कुछ रूखे स्वभाव के मनुष्य थे और प्रबंधों के मारे इन्हें साहित्य आदि कुरुचिकर भी मालूम होते थे, परन्तु प्रत्येक जीवित मनुष्य के लिए दिल बहलाने का एक न एक रास्ता रहता है और उसके लिए वह समय निकालने के लिए बाधित होता है। रईसों में हँसी मसख़रे पन की बातें या वैसीही कविता अधिक रुचिकर समझी जाती है और सैयद इंशा भी नई रङ्गीन कविताएँ करने और चोज़ की बात निकालने में एकही थे। यद्यपि इन्हें कोई पद नहीं प्राप्त हुआ पर वह हर समय के साथ के कारण मुँह लगे दरबारी होगए थे। इस समय में इन्होंने सैकड़ों आदमी के काम निकाल दिए और इसके लिए वह अनेकों के धन्यवाद के पात्र हुए थे।

सआदत अली खाँ इन्हें कभी कभी विचित्र समस्याएँ पूर्ति करने के लिए देते थे। एक बार दरबार में कोई मनुष्य बेढङ्गी चाल से पगड़ी बाँधे हुए सामने आया कि तुरन्त नवाब साहब ने एक मिसरा दुरुस्त कर इन्हें ग़ज़ल तैयार करने की आज्ञा दी। वह मिसरा यों था—

पगड़ी तो नहीं है यह फ़रासीस की टोपी।

इस पर इन्हों ने तुरन्त ग्यारह शैरों की एक ग़ज़ल कह

डाली, जिसके दो चार शैर उद्धृत कर दिए जाते हैं:—

पगड़ी तो नहीं है यह फ़रासीस की टोपी।
याँ वक्ते सलाम उतरे है इबलीस की टोपी॥
हुदहुद को खुशी तब हुई जिस दम नजर आई।
हाथों में सुलेमान के बिलक़ीस की टोपी॥

मुमकिन हो तो धर दीजे बनाकर तेरे सिर पर।
ज़रबफ्ते महो ज़ुहरओ बिरजीस की टोपी॥
'इंशा' मेरे आग़ा की सलामी को झुके है।
सुक्काने सरापरदए तक़दीस की टोपी॥

एक दिन नवाब सआदत अली खाँ बजड़े पर सवार होकर सैर करने निकले और बजड़ा बहता बहता अली नक़ी बहादुर की हवेली के सामने पहुँचा, जो नदी के तट पर बनी हुई थी। उस पर ये शब्द लिखे थे—हवेली अली नक़ी बहादुर की। नवाब साहब ने देखते ही कहा कि देखो इंशा, किसी ने एक चरण कहा है पर पूरा नहीं कर सका है, तुम्हीं इसे पूरा करदो। इंशा ने उसी समय यह रुबाई बनाकर कह डाली:—

न अरबी न फारसी न तुर्की।
न सुम की न ताल की न सुर की॥
यह तारीख़ कही है किसी लुर की।
हवेली अली नक़ी बहादुर की॥

किसी दिन सैयद इंशा नवाब साहब के साथ बैठकर भोजन कर रहे थे। कुछ गर्मी मालूम हुई इसलिए पगड़ी उतार दी। इनका सिर मुड़ा हुआ सफ़ाचट देखकर नवाब साहब के मनमें कुछ चुहल समाई तो उन्होंने झट एक चपत जमा दी। इन्हों ने तुरंत यह कहते हुए पगड़ी सिर पर रखली कि सुभानअल्लाह! बचपन में बड़े लोग समझाया करते थे कि नङ्गे सिर खाना खाते समय शैतान धौल मारता है, वह बहुत ठीक है।

नवाब सआदत अली खाँ की आज्ञा थी कि दफ्तर के लेखक गण अक्षर बनाकर लिखा करें और मात्रा की अशुद्धि होने पर भी प्रति अशुद्धि एक रुपया दण्ड लगे। दैवात् एक विद्वान मौलवी साहब ने भूल से अजनास के बदले अजना लिख दिया जिसपर नवाब साहब की नज़र पड़ गई। मौलवी साहब वैयाकरणी थे, उन्होंने सूत्रों की मार से उसे शुद्ध करना चाहा, जिस पर नवाब साहब ने सैयद इंशा को इशारा किया जो वहाँ हाजिर थे। इन्होंने रुबाई आदि बनाकर मौलवी साहब को बनाडाला, जिनका नाम मौलवी सजन था:—

अजनास की फ़रद पर यह अजना कैसा?
याँ अब्र लुग़ात का गरजना कैसा?
गोहूँ अजना के मआनी जो चीज़ उगे।
लेकिन यह नई उपज उपजना कैसा?

तरख़ीम के क़ायदे से सजना लिखिए ।
और लफ़ज़ ख़रोजना को ख़जना लिखिए ॥
गर हमको अजी न लिखिए हो लिखना ।
तो करके मरखूम उसको अजना लिखिए ॥
अजनास के बदले लिखिए अजना क्या खूब ।
क़ामूस की राद का गरजना क्या खूब ॥

अज़ रूए लुग़त नई उपज की ली है ।
इस तान के बीज का उपजना क्या खूब ॥
अजनास के मौक़न में अजना आया ।
सुलमाए उलूम का यह सजना आया ॥
अजना चीज़िस्त काँ बेरवेद ज़े ज़मीं ।
यह तुख़्मे लुग़त का लो उपजना आया ॥

रात्रि अधिक व्यतीत हो गई थी और इंशा के किस्से कहानी के फ़ुहारे छूट ही रहे थे । बाहर के रहने वाले एक दूसरे मुसाहिब थे, जो बहुधा अन्य मुसाहिबों की हँसी लिया करते थे और उन्होंने नवाब साहब से कहा भी था कि आप सैयद इंशा को बहुत बढ़ाते हैं, वस्तुतः वह इतने योग्य नहीं हैं । उस समय उन्होंने बक़ा का एक शैर पढ़ाः—

देख आईनः जो कहता है कि अल्लाह रे मैं ।
उसका मैं देखने वाला हूँ बक़ा वाह रे मैं ॥

इसको सुनकर सभीने प्रशंसा की और नवाब साहब को भी यह पसन्द आया। तब उन्होंने कहा कि हुजूर, सैयद इंशा से भी इस मतलअ को कहलाया जाय। नवाब ने इनकी ओर देखा। इन्होंने बुद्धि लड़ाई परन्तु वह बेजोड़ मतलअ था तब अन्त में शैर तैयार करके कहा कि मतलअ तो नहीं बन सका परन्तु शैर यों है:—

एक मिल्की खड़ा दरवाज: पै कहता था रात।
आप तो भीतरे जा पाड़: रहे बाहरे मैं॥

इस शैर में 'बाहरे' शब्द द्व्यर्थक है और बाहरे वाले मुसाहिब पर चोट की गई है। पूर्वोक्त घटनाओं से ज्ञात हो जाता है कि सैयद इंशा नवाब सआदत अली खाँ के दरबार में किस प्रकार जीवन व्यतीत कर रहे थे। इसके समर्थन में यह लिखा जाता है कि जब शाह नसीर दिल्ली से लखनऊ आए, तब वह सैयद इंशा से भी मिलने गए और उनसे कहा कि भई, मैं केवल तुम्हारे विचार से लखनऊ आया हूँ, नहीं तो मेरा यहाँ कौन बैठा है। उस समय रात्रि अधिक जा चुकी थी। मीर इंशाअल्लाह ख़ाँ ने कहा कि शाह साहब, यहाँ का दरबार विचित्र है, क्या कहें? जनता समझती है कि मैं कविता करके सेवा बजाता हूँ, पर मैं स्वयं नही जानता कि मैं क्या कर रहा हूँ? सुबह का गया गया सन्ध्या को घर आया था कि चोबदार ने आकर कहा कि आपको जनाबे-

आली फिर याद करते हैं । जाकर देखता हूँ तो कोठे पर पहिएदार छपरखट पर आप बैठे हैं, बिछौना बिछा हुआ है, फूल रखे हुए हैं और आप गजरे को उछालते और रोकते हैं। पाँव के इशारे से छपरखट आगे बढ़ रहा था। देखते ही कहा कि कोई शैर पढ़ो। अब कहिए, जब आपही काफ़ियातङ्ग होरहा था तब ऐसे समय क्या शैर कहा जाए, पर उस समय यही समझ में आगया, कह दिया और वह खुश भी हो गए।

लगा छपरखट में चार पहिए उछाला तूने जो लेके गजरा।
तो मौज दरियाए चाँदनी में वह ऐसा चलता था जैसे बजरा॥

एक दिन सैयद इंशा प्रसिद्ध कवि जुरअत के गृह पर गए तो देखा कि वह सर झुकाए बैठे कुछ सोच रहे हैं। इन्होंने पूछा कि किस विचार में मग्न हैं? उत्तर दिया कि एक मिसरा ध्यान में आ गया है और मैं चाहता हूँ कि पूरा मतलअ हो जाय। इन्होंने पूछा कि वह कैसे है। जुरअत ने कहा कि नहीं, जब तक दूसरा मिसरा न लग जाएगा, नहीं सुनाऊँगा। इनके हठ करने पर जुरअत ने पढ़ दिया। मिसरा—

उस ज़ुल्फ़ पै फबती शबे दैजूर की सूझी।

सैयद इंशा ने झट दूसरा मिसरा कहा कि—

अंधे को अँधेरे में बहुत दूर की सूझी॥

जुरअत वृद्धावस्था के कारण अन्धे हो गए थे, इस पूर्ति को सुनकर हँस पड़े और अपनी लकड़ी उठाकर मारने दौड़े। सैयद साहब भागते फिरे और यह पीछे टटोलते रहे। इससे यह भी प्रकट होता है कि इंशा कैसे हँसोड़ थे और वह समय भी कुछ ऐसाही था कि सभी विनोदप्रिय होते थे।

सं० १८६४ में कर्नल जौन बेली अवध के रेजिडेन्ट नियुक्त हुए और इस पद पर वे सं० १८७२ तक रहे। इन्हीं के नाम से एक फाटक बेली गारद आज तक कहलाता है। यद्यपि इन्होंने सैयद इंशा का नाम और उनकी प्रसिद्धि सुनी थी पर कभी देखा नहीं था। एक दिन सैयद इंशा नवाब की हाजिरी में थे कि बेली साहिब के आने का समाचार मिला। नवाब ने कहा कि आज तुम्हें साहब से परिचित कराएँगे। जब साहब आए और नवाब तथा वह आमने सामने कुर्सियों पर बैठ गए तब इंशा नवाब के पीछे खड़े होकर रूमाल हिला रहे थे। बातें करते करते जब साहब ने इनकी ओर देखा तो इन्होंने मुँह बिचका दिया, जिससे उन्होंने आँखें नीची कर लीं। जब इस प्रकार दो तीन बार हो चुका तब साहब ने नवाब से पूछा कि यह मुसाहब आपकी सेवा में कब से आया है? नवाब ने कहा कि यही सैयद इंशा अल्लाह खाँ है, जिन्हें आपने आजही देखा है। यह ज्ञात होने पर बेली साहब बहुत हँसे और इनकी बात चीत से

ऐसे प्रसन्न हुए कि जब आते तब पहले इन्हीं को पूछते थे ।

रेज़िडेन्सी के मीर मुंशी अली नक़ी ख़ाँ बहादुर भी साहब के साथ बहुधा आया करते थे, जिनसे और इंशा से दो एक चोट चल जाया करती थी। एक दिन बात चीत में मुन्शीजी के मुँह से निकल गया कि गुलिस्ताँ के हर एक शेर में भिन्न भिन्न रवायतें हैं इस लिए मिसरा—'शायद कि पलंग ख़ुफ़्तः बाशद' भी 'शायद कि पलंग ख़ुफ़ियः बाशद' हो सकता है ।

नवाब ने इंशा की ओर देखा, जिस पर इन्होंने कहा कि 'मीर मुंशी ठीक कहते हैं, क्योंकि मैंने भी एक प्रति में इस प्रकार लिखा देखा है कि—

ता मर्द सख़ुन न गुफ़ियः बाशद ।
ऐबो हुनरश निहुफ़ियः बाशद ॥
दर बेशः गुमाँ मेबर के ख़ालीस्त ।
शायद के पलंग ख़ुफ़ियः बाशद ॥

वह प्रति बहुत शुद्ध थी और उसमें गुफ़ियः और निहुफ़ियः के कुछ अर्थ भी दिए थे जिसे मीर मुंशी साहब अवश्य जानते होंगे ।' वह बेचारे बड़े लज्जित हुए। जब वे जाने लगते तब सैयद बहुधा कहा करते थे कि 'मीर मुन्शी का अल्लाह बेली'। गुफ़ियः और निहुफ़ियः अशुद्ध है और इस लिए तुक मिलाने के लिए ख़ुफ़ियः का प्रयोग नहीं किया जा सकता है, यही सैयद इंशा ने दिखलाया था।

एक दिन नवाब साहब ने कहा कि हिज्र को हज्र भी कह सक्ते हैं। बेली साहब ने उत्तर दिया कि ऐसा मुहावरा नहीं है। तब नवाब ने कहा कि यदि कोष के अनुसार ठीक है, तो कोई हर्ज नहीं। इसी समय इंशा भी आपहुँचे, जिनसे बेली साहब ने पूछा कि हिज्र और हज्र में कौन ठीक है ? इन्हें क्या मालूम कि क्या बात है, झट कह दिया कि हिज्र। पर नबाब साहब की तेवर ताड़कर बोले कि तभी जामी ने कहा है:--

शबे वस्ल अस्तो तै शुद नामए हज्र।
सलामो हीय हत्ते मतलउल् फ़ज्र॥

यह सुनकर नवाब साहब और अन्य दरबारी सभी प्रसन्न हो गए।

[इंशा के अन्तिम दिन]

सैयद इंशा का रंग गोरा और शरीर मोटा ताजा था। किसी पर्व के दिन यह काश्मीरी ब्राह्मण का स्वाँग बनाकर और छापे तिलक का सामान लेकर घाट पर जा डटे और उच्चस्वर से श्लोक आदि पढ़ने लगे। स्नान करनेवालों में स्त्री पुरुष बाल बच्चे सभी इनकी मुटाई और पढ़ाई पर रीझकर इन्हीं की ओर झुकते, यह छापा तिलक लगाते और मंत्र पढ़ पढ़ दक्षिणा, अन्न आदि वसूल करते। वहाँ के सभी घाटियों में

से इन्हीं के आगे अधिक अन्न आदि का ढेर लगा हुआ था। इससे यह भी मालूम होता है कि ये पक्के धूर्त थे।

यह सब बातें थीं ही परन्तु इसी हँसी मसखरापन के के कारण नवाब सआदत अली के यहां इनका अंत अच्छा नहीं हुआ। यद्यपि इन्होंने अपने लच्छेदार बातों से उन्हें परचा लिया था परन्तु दोनों के स्वभाव बेमेल थे जैसा कि इन्हीं के एक शैर से ज्ञात होता है—

रात वह बोले मुझसे हँसकर चाह मियां कुछ खेल नहीं।
मैं हूँ हँसोड़ औ तू है मुक़त्तअ मेरा तेरा मेल नहीं॥

इन्हें मेले तमाशे का बहुत शौक़ था और मित्रों का अनुरोध भी रहता था इससे इन्हें बहुधा नवाब साहिब से छुट्टी माँगने को वाध्य होना पड़ता था और वे मेले तमाशे से चिढ़ते थे। जाते समय यदि वे व्यय के लिए कुछ माँगते तो नवाब साहब को बुरा मालूम होता था। इन सब बातों से नवाब का हृदय इनकी ओर से फिर गया था। उन्हीं दिनों एक दिन जलसे में रईसों के वंश की शुद्धता और वर्णशङ्करता पर तर्क हो रहा था कि नवाब साहब ने कहा कि क्यों भई, हम भी नजीबुलतरफ़ैन (जो माता और पिता दोनों ओर से शुद्ध और उच्चवंशीय हो) हैं? नवाब सआदतअली के पिता नवाब

शुजाउद्दौला का केवल एक विवाह उम्मतुज्ज़ोहरा बेगम से हुआ था जिनकी पदवी बहू बेगम साहबः थी और उन्हें केवल एक सन्तान नवाब आसफ़ुद्दौला थे। नवाब शुजाउ-द्दौला को हरम से २५ पुत्र और २२पुत्रियाँ थीं। इन्हीं में स्यात् गुन्ना बेगम से, जो क़िज़िलबाश ख़ाँ उमेद की पुत्री थी, नवाब सआदत अली ख़ाँ का जन्म हुआ था। दैवकोप से कहिए, कुटिल कर्म के कुचक्र से कहिए या अधिक मुँह लगने के कारण सैयद इंशा के मुख से निकल गया कि हुज़ूर, अनजब। नवाब साहब चुप और कुल दरबारी चुप! इंशा ने अनेक बातें बनाकर उस बात को उड़ाना चाहा परन्तु मुख से निकली हुई बात और धनुष से छुटा हुआ तीर कभी नहीं लौटता। यह शब्द इस कहावत का एक अंश है कि 'वल्दुलूजारियते अनजबो' अर्थात् लौंडी से उत्पन्न भी शुद्ध है।

नवाब साहब के हृदय से यह खटक नहीं निकली और वह इस विचार में रहने लगे कि कोई बहाना मिले तो इन्हें दण्ड दूँ। इंशा अनेक प्रकार की बातों और चुट-कुलों से उस खटक को निकाल देना चाहते थे परन्तु उसमें सफलता नहीं मिलती थी। किसी दिन इंशा ने एक अच्छा किस्सा कह सुनाया, जिस पर नवाब साहब ने कहा कि इंशा जब कहता है तब ऐसी बात कहता है, जो न देखा हो

न सुना हो । इन्होंने मोछों पर ताव देते हुए कहा कि हुजूर के इक़बाल से मैं ऐसे किस्से कहानी प्रलय तक कहता जाऊँगा, जो न देखने में और न सुनने में आई हों। नवाब साहब तो अवसर ढूँढते ही थे, उन्होंने झट क्रुद्ध स्वर से कहा कि अधिक तो नहीं, केवल दो ऐसे किस्से रोज सुना दिया कीजिए पर साथ ही यह कि न देखे हों और न सुने हों, नहीं तो खैर नहीं। इंशा भी ताड़ गए कि बात बिगड़ गई। कुछ दिन योंही चला पर अन्त में दरबार जाते समय पास बैठे हुए लोगों से पूछते कि कोई नया किस्सा सुना हो तो बतलाइए। कोई क्या बतलाता और कितने दिनों तक। एक दिन सआदत अली खाँ ने इन्हें बुलाने के लिए चोबदार भेजा, पर यह किसी दूसरे रईस के यहाँ गए हुए थे। चोबदार ने जब यह जाकर कह दिया तब नवाब ने इन्हें दूसरे अमीरों के यहाँ न जाने की आज्ञा दी जिससे इन्हें बहुत कष्ट हुआ।

इन्हीं दिनों इन पर शोक का पहाड़ टूट पड़ा अर्थात् इनके युवा पुत्र तआल्लुल्लाह खाँ की मृत्यु हो गई, जिससे इनकी बुद्धि में कुछ फ़र्क़ आ गया। यह यहाँ तक बढ़ा कि एक दिन नवाब सआदतअली खाँ की सवारी इनके घर की ओर से जा रही थी कि शोक और क्रोध के मारे रास्ते ही में खड़े होकर नवाब को बुरा भला कह डाला। नवाब ने महल

में पहुँचकर उनका वेतन बंद कर दिया, जिससे पागलपन में कुछ भी कमी नहीं रह गई।

सैयद इंशा का जीवनचरित्र सांसारिक प्रगति अर्थात् संसार के उतार और चढ़ाव का बहुत ही सच्चा और उपदेशमय चित्र है, जिसके पढ़ने से किसी सच्चे हृदय में अवश्य विरक्ति का भाव उत्पन्न हो जाएगा। यह कपोलकल्पित औपन्यासिक कथा मात्र नहीं है परंतु वस्तुतः घटित घटनाओं का आदर्श चित्रण है जिससे मायाजाल में फँसे प्रत्येक मनुष्य को उत्तम शिक्षा मिल सकती है। कहाँ एक वह समय था कि दिल्ली के सम्राट् शाहेआलम के प्रिय कृपापात्र होने से और लखनऊ आने पर नवाब सआदत अली खाँ की नाक के बाल हो जाने से इनके द्वार पर घोड़े, हाथियों, पालकी और नालकी का ऐसा जमघटा रहता था कि जल्दी रास्ता नहीं मिलता था और कहां वह समय आ गया कि वह अपने ही घर में बिना हथकड़ी बेड़ी के क़ैद हो गए। इस गिरती हुई दशा में वेतन का बंद होना बहुतही कष्टकर हो गया। धीरे धीरे वह सब ऐश्वर्य भी विलीन हो गया और वे रोटियों के मुहताज हो गए।

सैयद इंशा के अंतरंग मित्र सआदतयार खाँ 'रंगीं' इसी समय के एक दृश्य का वर्णन करते हैं कि जब वे घोड़ों के व्यापार के लिए लखनऊ गए और एक सराय में उतरे तब

उन्हें सन्ध्या को मालूम हुआ कि पासही एक कविसभा होने वाली है। वे भी तैयार होकर वहाँ पहुँचे जहाँ लगभग दो तीन सौ के मनुष्य एकत्र होकर बैठे बातचीत कर रहे थे और गुड़गुड़ी सटका रहे थे। इतने ही में देखते हैं कि एक मनुष्य मैले कपड़े पहिरे, सिर पर मैला फेंटा बाँधे, गले में एक थैला डाले और हाथ में हुक्का लिए आया और साहब सलामत कर बैठ गया। उसने हुक्का चढ़ाकर आग माँगी जिसपर लोग सटक पेचवान आदि लाने लगे परन्तु इससे वह बिगड़ उठा और कहने लगा कि साहबो हमें अपनी हाल में रहने दो, नहीं तो मैं जाता हूँ। सब ने उसकी आज्ञा मान ली, तब थोड़ी देर बाद उसने फिर पूछा कि भाई, क्या अभी सभा आरंभ नहीं हुई? लोगों ने कहा कि अभी सब साहब नहीं आए हैं, उनके आजाने पर आरंभ होगी। वह बोला कि साहब, हम अपनी ग़ज़ल पढ़ देते हैं। यह कह कर ग़ज़ल निकालकर पढ़ना आरंभ कर दिया:—

कमर बाँधे हुए चलने को याँ सब यार बैठे हैं।
बहुत आगे गए बाक़ी जो हैं तैयार बैठे हैं॥ १॥
न छेड़ ए निगहते बादे बहारी राह लग अपनी।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेज़ार बैठे हैं॥ २॥
तसौव्वर अर्श पर है और सर है पाए साक़ी पर।
ग़रज़ कुछ ज़ोर धुन में इस घड़ी मैख़्वार बैठे हैं॥ ३॥

बसाने नक़्शपाए रहरवाँ कूए तमन्ना में।
नहीं उठने की ताक़त क्या करें लाचार बैठे हैं ॥ ४ ॥

यह अपनी चाल है उफ्तादगी से अब कि पहरों तक।
नज़र आया जहाँ पर सायए दीवार बैठे हैं ॥ ५ ॥

कहाँ सब्रो तहम्मुल, आह! नंगो नाम क्या शै है।
मियाँ रो पीट कर इन सबको हम एकबार बैठे हैं ॥ ६ ॥

नजीबों का अजब कुछ हाल है इस दौर में यारो।
जहाँ पूछो यही कहते हैं हम बेकार बैठे हैं ॥ ७ ॥

भला गर्दिश फ़लक की चैन देती है किसे 'इंशा'।
ग़नीमत है कि हम सूरत यहाँ दोचार बैठे हैं ॥ ८ ॥

सैयद साहब तो यह ग़ज़ल पढ़कर और काग़ज़ फेंककर साहब सलामत करते हुए चलदिए, पर कविसभा में सन्नाटा सा छागया। क्यों न हो, यह दिल जले मनुष्य के हृदय के फफोलों का सच्चा उद्गार था। इसका सुननेवालों पर जो ऐसा असर पड़ा तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस ग़ज़ल का केवल अर्थ नीचे देदिया जाता है, व्यर्थ की टिप्पणी की क्या आवश्यकता? प्रत्येक अनुभवी और समझदार पुरुष को उसका नित्यप्रति अनुभव होता है जो इस ग़ज़ल में दिखलाया गया है।

वर्तमान समाज के असंख्य मित्र गण आगे जा चुके हैं

और जो बचे हुए हैं वे भी कमर बाँधकर चलने को तैयार बैठे हुए हैं ॥ १ ॥

हृदय ऐसा टूट गया है कि सुगंधित समीर के लगने से आप उससे भी बिगड़ गए और कहने लगे कि अरे मुझे क्या छेड़ता है ? जा अपना रास्ता ले । तुझे अठखेलियाँ सूझ रही है और मैं दुख में बैठा हुआ हूँ ॥ २ ॥

शिर यहाँ माया के फंद में फँसा है और उसीके आंतरिक विचार परमेश्वर के सिंहासन तक पहुँचे हैं अर्थात् ये सांसारिक मनुष्य किसी धुन में इस समय यहां बैठे हुए हैं ॥३॥

पथिकों के पदचिन्ह की नाईं हम भी इस इच्छा रूपी गली में निरुपाय होकर बैठे हैं, क्या करें उठने की शक्ति नहीं है ॥ ४ ॥

दीनता के कारण अब यह हाल है कि जहां दीवार का साया मिलगया वहाँ पहरों पड़े हुए हैं ॥ ५ ॥

संतोष, धैर्य, लज्जा और ख्याति क्या वस्तु है और कहां है ? अरे, इन सब को हम रो पीट चुके हैं, इन के किए कुछ नहीं होता । इसीसे निराश हो बैठे हैं ॥ ६ ॥

वर्तमान समय में भले आदमियों का विचित्र हाल है, जिससे पूछो वही कहता है कि हम निराश्रय हैं ॥ ७ ॥

इंशा कहते हैं कि यह संसारचक्र किसे सुख करने देता है । यही बहुत कुछ है कि यहां दो चार मित्र बैठे हुए हैं ॥८॥

सआदतयार खाँ ने जब उनकी ग़ज़ल सुनी तब पहिचाना और घर पर जाकर उनसे भेंट की। इसके अनंतर उनकी और भी दुर्दशा हुई। उन्हीं के मित्र सआदतयार खाँ का कथन है कि जब इसके अनंतर वह फिर दिल्ली से लखनऊ आए और उनके घर पर गए तो दरवाज़े पर धूल उड़ती मिली। दरवाज़ा खटखटाया तो किसी वृद्धा ने पूछा कि कौन है? यह वृद्धा सैयद इंशा की स्त्री थी और उसने इनको नाम लेने पर पहिचाना और कहा कि भाई मैं हट जाती हूँ, भीतर आकर उनकी हालत देखो। यह भीतर जा कर देखते है कि नंगे बदन एक कोने में घुटनों पर सिर रखे हुए बैठे हैं, आगे राख का ढेर है और टूटा हुआ हुक्का रखा है। शोक के साथ लिखते हैं कि इनकी इस दुर्दशा से संसार की असारता स्पष्ट मालूम होती थी। एक वह ऐश्वर्य और वैभव का जमघट और दूसरे यह समय। ऐसीही दुर्दशा में कष्ट उठाकर सं० १८७५ में इनकी मृत्यु हो गई।

मुंशी बसंतसिंह 'निशात' ने तारीख़ कही कि—

साले तारीख़ ओ ज़े जाने अजल।
उर्फ़िए वक्त बुवद इंशा गुफ्त ॥ (१२३३ हि०)

[इंशा की रचनाएँ]

इनके वृतांत से यही मालूम होता था कि इनकी लेखनी

से अनेकानेक रचनाएं निकली होंगी परंतु केवल निम्नलिखित पुस्तकों का पता चलता है:—

१. कुलिआत अर्थात् काव्यसंग्रह—इसमें सैयद इंशा के काव्यों और फुटकर कविताओं का संग्रह है जिनके नाम क्रम से इस प्रकार है:—

१. ग़ज़लों का दीवान।
२. रेख़्ती का दीवान और पहेलियाँ आदि।
३. क़सीदे—ख़ुदा, बादशाह, सर्दारों आदि पर।
४. क़सीदे (फ़ारसी)।
५. फ़ारसी ग़ज़लों का दीवान।
६. मसनवी शीर बिरंज (फ़ारसी)।
७. मसनवी बे नुक़्ते की ,, ।
८. शिकारनामा, नवाब सआदतअली ख़ाँ का (फ़ारसी)
९. हजोएँ—मक्खी, खटमल, मच्छड़, मनुष्यों आदि पर।
१०. मसनवी आशिक़ानः।
११. हाथी और चंचलप्यारी हथिनी का विवाह।
१२. फुटकर कविता, पहेली आदि।
१३. बे नुक़्ते का दीवान।
१४. मातए आमिल (फ़ारसी)।
१५. मुर्ग़ नामः।

२. दरियाए लताफ़त—इसके दो भाग हैं। प्रथम भाग

में इंशा ने उर्दू का व्याकरण दिया है। दूसरा भाग मिर्ज़ा क़तील का लिखा हुआ है।

३. रानी केतकी की कहानी—यह कहानी ठेठ हिंदी में लिखी गई है जिसमें अरबी फारसी के एक शब्द भी नहीं आए हैं। इसमें भी अपनी हँसी मसखरेपन के नमूने देना नहीं भूले। हिंदी गद्य साहित्य के इतिहास में इनका स्थान इसी पुस्तक के कारण पं० लल्लूलालजी और पं० सदल मिश्र के समकक्ष है।

ग़ज़लों का दीवान—इस संग्रह के देखने से मालूम हो जाता है कि इनकी भाषा कितनी परिपक्क थी और इनका उसपर कितना अधिकार था। "भाव अनूठो चाहिए, भाषा कैसिहु होय।' की उक्ति इनके कविता में नहीं चरितार्थ हो सकती। इनके भाषा की प्रांजलता और परिपक्कता का प्रति पंक्ति से पता चल सकता है। जिन ग़ज़लों में भाव आदि अच्छे आगए हैं वे अद्वितीय हैं और जहाँ वे नहीं आ सके वहाँ भाषा का अनूठापन देखिए। छंद शास्त्र के नियमों की भी वह परवा नहीं करते थे। केवल इस कारण कि जब भाव या विचारों का मौज उमड़ता था तब भाषा जो उनकी अनुवर्तिनी थी उससे जैसा चाहते थे वैसा स्वरूप खड़ा कर लेते थे।

दीवाने रेख़्ती—छोटा संग्रह है। यद्यपि रेख़्ती के जन्म-

दाता सआदतयार ख़ाँ 'रंगीं' हैं परंतु सैयद इंशा ने भी इसमें नए नए रंग की बात और अच्छे अच्छे ढंग निकाले हैं। दिल्ली से कहीं अधिक लखनऊ में इसकी उन्नति हुई। इस ढंग में इंशा की पहेलियाँ, जादू के नुसख़े आदि विचित्र प्रकार से लिखे गए हैं।

क़सीदे—ये भी बड़े धूमधाम से लिखे गए हैं। इंशा के शब्दाडम्बर और कल्पनाओं की उच्चता इनमें साफ़ झलकती है। कोई अच्छा भाव सूझ गया कि उन्होंने उसे क़सीदे में बाँध दिया, चाहे वह उसके योग्य होया न हो, परंतु उनके भावों में सर्वदा एक प्रकार की विचित्रता रहती थी जिससे पढ़ने और सुनने वाले उसकी प्रशंसा करने लगते थे। फ़ारसी, तुर्की और अरबी में भी क़सीदे कहे हैं जिनसे इनकी उन भाषाओं की योग्यता प्रकट होती है। फ़ारसी की इनकी योग्यता बहुत बढ़ी चढ़ी हुई थी परंतु उसमें भी वही हँसी मसख़रापन और वही शब्दों की भारी योजनाएँ भरी हैं। इसी में एक क़सीदः बिना नुक़ते अर्थात् बिंदी का कहा है और उसे तौरुलकलाम नाम दिया है।

दीवान फ़ारसी—छोटा सा संग्रह है, जिसमें लगभग पचहत्तर ग़ज़लें हैं। भाषा बहुत परिमार्जित और अनूठी है परंतु वही बाहरी तड़क भड़क देख लीजिए, अंतरात्मा का लेश नहीं है। भाषा पर इनका जो प्रभुत्व था यदि उसके

साथ गांभीर्य और गवेषणा भी होती तो यह अपने समय के सादी या ख़ुसरो होते।

मसनवी शीर बिरंज और मसनवी बे नुक़त—ये दोनों फ़ारसी में है। पहिली मौलाना रूम के चाल पर लिखी गई है। इसमें बहुत सी कहानियाँ हैं जिन्हें कविता में सजाया है। मसनवी बे नुक़त भी फ़ारसी में है और केवल तीन पृष्ठों में समाप्त होगई है।

शिकारनामा—इस में तीन पृष्ठों में नवाब सआदतअली ख़ाँ के शिकार का वर्णन है। यह फ़ारसी में है और वर्णन बहुत उत्तम है।

हजोएँ, मसनवी फ़ील—दोनों उर्दू में हैं। हजोएँ अच्छी कही है। मसनवी फ़ील में एक हाथी और चंचल प्यारी हथिनी का विवाह बड़े धूमधाम से किया है। इसका उत्तरार्द्ध अत्यंत अश्लील है। इसी मसनवी के साथ बहुत से क़ितः, पहेली, चीस्ताँ आदि भी है पर सभी हँसी मसख़रापन से भरे हैं।

दीवान बे नुक़त—परिश्रम का फल मात्र है।

मसनवी मातए आमिल—अरबी भाषा का कुछ हाल फ़ारसी कविता में लिखा है।

मुर्ग़नामः—उर्दू में छोटी सी मसनवी है।

दरिआए-लताफ़त—उर्दू साहित्य का यह प्रथम व्याकरण है और गद्य साहित्य में इससे प्राचीनतर दो ही एक पुस्तक प्राप्य हैं। इस पुस्तक की भाषा में भी वही हंसोड़पन भरा हुआ है और आरंभ में उर्दू बोलनवालों की भिन्न भाषाओं के नमूने दिए गए हैं, जिनमें अश्लीलता की मात्रा कम नहीं है। यह पुस्तक दो भागों में विभाजित है। पूर्वार्द्ध सैयद इंशा की रचना है और उत्तरार्द्ध मिर्ज़ा क़तील की कृति है। परंतु इस स्नान घर में सभी नंगे हैं और मिर्ज़ा क़तील के उदाहरणों में भी अश्लीलता और हंसोड़पन भरा हुआ है। मिर्ज़ा क़तील ने छंद शास्त्र पर लिखा है और फ़ारसी नामों के स्थान पर हिंदी नाम रखा है जैसे मुरब्बः का चौकड़ा और मुसल्लस का तिकड़ा आदि।

रानी केतकी की कहानी—इसके विषय में भूमिका में पूर्णतया विचार किया जायगा। यह कहानी भी समग्र आगे दी गई है।

[इंशा की भाषा]

सैयद इंशा फ़ारसी और उर्दू के प्रसिद्ध विद्वान और सुकवि थे, अरबी के भी अच्छे ज्ञाता थे और भारत की अनेक भाषाओं का—पूरबी, ब्रजभाषा, पंजाबी आदि—भी इन्होंने अपनी कविता में प्रयोग किया है। ये प्रयोग ऐसी सफाई के साथ किए गए हैं कि वे कहीं खटकते नहीं। इनके समय में लखनऊ में अंग्रेज़ों का रहना आरंभ होगया था, इसलिए

सैयद इंशा ने अंग्रेजी भाषा को भी नहीं छोड़ा और उस भाषा के बहुत से शब्दों का अपने ग़ज़लों में प्रयोग किया है। एक कसीदः जौर्ज तृतिय की राजगद्दी के समय लिखा था, जिसका कुछ अंश उद्धृत किया जाता है।

बग्गियाँ फूलों की तैयार कर ऐ बूए समन।
कि हवाखाने को निकलेंगे जवानाने चमन ॥
कोई शबनम से छिड़क बालों पै अपने पोडर।
कुर्सिए नाज़ पै जिलवः की दिखावेगा फबन ॥
अपने गीलासे शिगूफः भी करेंगे हाज़िर।
आके जब गुंचए गुल खोलेंगे बोतल के दहन ॥
औरही जलवे निगाहों को लगेंगे देने।
ऊदी बानात की कुर्ती से शिकोहे सौसन ॥
पत्ते हिल हिलके बजावेंगे फ़िरंगी तंबूर।
लालः लावेगा सलामी को बनाकर पलटन ॥
खींचकर तार रगे अब्रेबहारी से कई।
खुद नसीमे सहर आवेगी बजाती अर्गन ॥
अपनी संगीनें चमकती हुई दिखलावेंगे।
आपड़ेगी जो कहीं नह्र पै सूरज की किरन ॥
अर्दली के जो गिरांडील हैं होंगे सब जमअ।
आनकर अपना बिगुल फूँकेगा जब सुखदर्सन ॥

आएगा नज्ञ को शीशः की घड़ी लेके हुबाब ।
यासमीं पत्तों के पीनस में चलेगी बन ठन ॥
निगहत आवेगी निकल खोल कली का कमरा ।
साथ हो लेगी नज़ाकत भी जो है उसकी बहिन ॥*

इन शैरों का अर्थ साफ़ है इस लिए उसके लिखे जाने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

उर्दू-साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि उर्दू की काव्य तथा गद्य भाषा का विकास प्रधानतः इसी सिद्धान्त पर हुआ है कि उसमें उसकी जन्मदात्री हिन्दी के शब्दों के बहिष्कार तथा फ़ारसी और अरबी शब्दों की भरमार कर सलासत व बलागत (माधुर्य और ओज) लाया जाय । आरम्भिक काल के कवियों से आरम्भ कर आधुनिक काल के कवियों की कृतियों से उदाहरण उद्धृत कर यह स्पष्टतया दिखलाया जा सकता है पर स्थानाभाव से ऐसा नहीं किया गया है । इस समय उर्दू के किसी प्रसिद्ध पत्र से एक पारा उठा लीजिये और उसमें से ने, का, है आदि

* हवाखाना=एयरिंग Airing । Powder=पोडर । Bottle=बोतल । Tambourine=तंबूर । battalion=पलटन । Organ=अर्गन । संगीन=बायोनेट Bayonet । Orderly=अर्दली । Grenadier=गिराँडील । Bugle=बिगुल । Watch=घड़ी । Pinnace =पीनस । Camera=कमरा ।

कुछ इने गिने शब्द हटाकर फ़ारसी के अस्त आदि शब्द रख दीजिये, तब आप देखेंगे कि फ़ारसी और उर्दू में कितनी भिन्नता रह जाती है। इसी उर्दू को, जो अब वास्तव में फ़ारसी हो रही है और जिसे भारत के नब्बे सैकड़े मुसल्मान भी सुगमता से नहीं समझ सकते, लोग हर एक भारतीय राष्ट्र संस्थाओं में घुसेड़ कर उसे पारसीय बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। अस्तु,

उर्दू-साहित्य में इंशा का समय प्रायः मध्य-काल में आता है और इसी कारण देखा जाता है कि इनकी कृतियों में दोनों का पूरा मेल है। [शुद्ध हिन्दी, शुद्ध फ़ारसी तथा बीच की उर्दू तीनों ही में इन्होंने रचनाएँ की हैं। उर्दू में इन्हीं के समय में ही घराऊ शब्दों की कमी तथा बाहरी की अधिकता होती रही थी और इनकी उर्दू कविता में भी ऐसा हुआ है। इतने पर भी नित, टुक, अँखड़ियाँ, झुमकड़ा आदि शब्द इनकी कविता में मिलते हैं। इतना ही बहुत है।

भाषा के साथ साथ इन्होंने अपनी कविता में इस देश के रस्म, प्राकृतिक दृश्य, कथानक आदि को भी स्थान दिया है जिसमें उनका जीवन व्यतीत हुआ था। उर्दू के लगभग सभी कवियों ने ईरान, तूरान, मिश्र आदि देशों की दजलः, फरात आदि नदियों, कोहेबेसतूँ, कसे शीरीं आदि पहाड़ों का खूब वर्णन किया है जिनमें से किसी को भी स्यात्

उन्होंने नहीं देखा था पर गंगा जमुना आदि नदियों तथा हिमालय, विंध्य आदि पर्वतों का जिक्र भूल कर न कर सके जिनकी आबोहवा में वे पले थे। कृतज्ञता प्रगट करने के ये नए रास्ते हैं। प्रो० आज़ाद ने लिखा है कि 'यह बात लुत्फ़ से नहीं ख़ाली है कि अपने मुल्क के होते अरब से बरूज़ को हिन्दुस्तान में लाना क्या जरूर है?' पर प्रोफेसर साहब भूल गए कि अपना मुल्क अभी तक अरब का रेगिस्तान ही समझा जाता है, वादिए गंग नहीं। अस्तु, अब इंशा की रचना से कुछ ऐसे उदाहरण दिए जाते हैं जिनसे पूर्वोक्त बातें स्पष्ट हो जाएँ।

टुक आँख मिलाते ही किया काम हमारा।
तिसपर यह गज़ब पूछते हो नाम हमारा॥

फबन, अकड़, छब, निगाह, सजधज, जमालो-तर्जे-खिराम आठों।
न होवें उस बुत के गर पुजारी तो क्यों हो मेले का नाम आठों॥

नहीं कुछ भेद से खाली यह तुलसीदास जी साहब।
लगाया है जो एक भौंरे से तुमने आँख का जोड़ा॥

लिपट कर कृष्ण जी से राधिका हँसकर लगीं कहने।
मिला है चाँद से एलो अँधेरे माघ का जोड़ा॥

पूरबी अवधी के एक गज़ल के दो शेर भी उदाहरण रूप में दिए जाते हैं—

मुत्फ़िकिरी में फिक्र भई मुफ्त आय कै।
झाऊ मियाँ के भूँ पै जो पटकिस घुमाय कै॥
इन्सालः खाँ मियाँ बड़े फाज़िल जहीन हैं।
सदरः पढ़े हैं जिन सेती तलिबुल्म आय कै॥

[हिंदी गद्य साहित्य में इंशा का स्थान]

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित प्रेमसागर की भूमिका में मैंने हिंदी गद्य-साहित्य-विकास शीर्षक लेख में लल्लू लालजी के समय तक के हिंदी गद्यलेखकों का संक्षिप्त विवरण तथा उनकी कृतियों से उदाहरण भी दिया है। इस छोटी सी पुस्तक में उससे विस्तृत लेख के समावेश करने का स्थान नहीं है और उसी लेख को पुनः ज्यों का त्यों इसमें दे देना अनावश्यक है इसलिए केवल 'इंशा' के समकालीन गद्यलेखकों ही पर विचार करना उचित है।

सं० १८६० में डा० जौन ग्रिलक्राइस्ट की आज्ञा से लल्लूलालजी ने प्रेमसागर आदि कई ग्रंथ और सदल मिश्र ने चंद्रावती नामक पुस्तक हिंदी खड़ी बोली में लिखी थी। लल्लूलाल ने कई पुस्तकें लिखी थीं इस लिए वे उन दो लेखकों में से विशेष महत्व के समझे गए। उस समय तक उसके पहले के लिखे गए हिन्दी गद्य के किसी ग्रन्थ का पता स्यात् कलकत्ते के साहित्यसेवियों को नहीं था और वे

यह भी नहीं जानते थे कि उसी समय लखनऊ तथा प्रयाग में खड़ी बोली हिन्दी में दो ग्रन्थकार निज रचनाओं का निर्माण कर रहे थे। इस कारण आँग्ल तथा उन्हीं द्वारा प्रभावान्वित साहित्यसेवियों ने लल्लूलाल जी ही को हिन्दी–गद्य–साहित्य का जन्मदाता मान लिया और यह भ्रम बहुत दिनों बना रहा। पर अब हिन्दी साहित्य की विशेष रूप से जाँच पड़ताल होने पर उसी भ्रम को आँखें मूँद कर मान लेना अनुचित है।

प्रेमसागर की भूमिका में लल्लूलालजी तथा इस ग्रन्थ में इंशाअल्लाह खां का पूर्ण परिचय दे दिया गया है। सदल मिश्र का भी संक्षिप्त विवरण प्रेमसागर में दिया गया है पर मुंशी सदासुखलाल के विषय में उस समय तक कुछ न ज्ञात होसका था। इधर कुछ पता लगा है जिसका संक्षेप में उल्लेख कर दिया जाता है।

मुंशी सदासुखलाल देहलवी 'नियाज' का जन्म दिल्ली में हुआ था। ईसवी अठारहवीं शताब्दि के अन्त में यह कम्पनी की अधीनता में चुनार में अच्छे पद पर नियुक्त थे। यह अपनी पुस्तक 'मुंतख़बुत्तवारीख़' में स्वयं लिखते हैं कि पैंसठ वर्ष की अवस्था में नौकरी छोड़कर ये प्रयाग चले आये, जहाँ उस समय अंग्रेजों का अधिकार हो चुका था, और वहीं आराम से रहने लगे। दश वर्ष में इन्हों ने १२५००

पंक्ति फारसी, उर्दू और भाषा की कविता की और ५००० पृष्ठ गद्य लिखा। इसके अनन्तर इन्होंने अपने इतिहास 'मुंतखबुत्तवारीख' में हाथ लगाया जो सन् १२३४ हि० (१८१८-१९ ई०) में समाप्त हुई। इनके अन्य ग्रन्थों में तंबीहुलजाहिलीन, मुंत्तखिबे बेबदल आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अंतिम मुसलमान बादशाहों के कुप्रबन्ध की खूब प्रशंसा की है।

इस प्रकार खड़ी बोली हिन्दी के आरंभिक चार हिन्दी गद्य-लेखकों का परिचय मिलने पर किसी एक को हिन्दी-गद्य-साहित्य का जन्मदाता कहना ही भूल है। यह आरम्भ चार लेखकों ने किया है और उस श्रेय के भागी चारों ही हो सकते है, इस लिए उस पदवी को तोड़ देना ही उचित है, जैसा कि प्रेमसागर की भूमिका में पहले ही प्रस्ताव किया जा चुका है।

हिन्दी के पद्य-साहित्य में जिस प्रकार रहीम, रसखान, जायसी आदि मुसलमान कवियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है उसी प्रकार गद्य-साहित्य के आरम्भ में एक मुसलमान का योग देना भी महत्वपूर्ण सथा शुभ-सूचक है।

[उर्दू-साहित्य में इनका स्थान तथा रचनाशैली]

जिस समय इंशा कविता-क्षेत्र में उत्तीर्ण हुए थे वह समय ही कुछ ऐसा था कि उसमें सुकविगण अपने शुभ

विचारों, स्वभाविक उद्गारों तथा स्वच्छ भावों को कविता में प्रकट करने के बदले अपने आश्रयदाताओं के विनोद तथा मनोरंजन के लिए उनके मनोनुकूल कविता करने के लिए बाध्य थे। वे आश्रयदातागण कवियों को वेतनभुक्त समझते थे और अपने मनोरंजन की विदूषकादि के चाल पर एक साधारण सामग्री मानते थे। ये कविगण यदि अपने प्रभु को प्रसन्न न रख सकें तो नौकरी से अपने को बरतरफ समझें। तात्पर्य यह कि ऐसी अवस्था में किसी भी सुकवि की प्रतिभा तथा कवित्वशक्ति हँसोड़ और मसखरेपन में समाप्त हो जाती है। जैसे ये आश्रमदाता, दैवदुर्विपाक से कहिए या समय का प्रभाव कहिए, मिले थे वैसेही उस समय के कविगण भी थे जो विद्याभिरुचि से नहीं, तर्कवितर्क तथा शास्त्रार्थ से बुद्धि-विद्यारूपी शस्त्र पर जिला देने के लिए नहीं प्रत्युत् अपने मालिक को प्रसन्न कर तथा रिझाकर, कविता से नहीं धौल धप्पड़ हजो आदि से, वेतन सिझाने में लगे थे। इंशा तथा मुसहिफ़ी के झगड़े ऐसेही हैं। सभ्य बीसवीं शताब्दी में ऐसे दृश्य कभी कभी साहित्य की संवर्द्धिनी सभा समितिओं में, संस्था के दो एक मुखियों को प्रसन्न करने के लिए या पत्र पत्रिकाओं में समालोचना की आड़ में तू तू मैं मैं कर जनसाधारण को प्रसन्न करने के लिए व्यर्थ दिखलाते रहते है। तत्कालीन बेताब का यह कथन वास्तव में सत्य है कि

'इंशा की विद्वत्ता को कविता ने और कविता को नवाब सआदतअली ख़ाँ की दरबारदारी ने नष्ट करदिया।'

इस प्रकार के आश्रय का इंशा की कविता पर अच्छा असर नहीं पड़ा और यही कारण है कि उनकी कविता में अधिक स्थलों पर भाव-गांभीर्य तथा विचारों की स्वच्छता के बदले छिछोरापन, अश्लीलता और हँसोड़पन भरा है। इंशा में धनतृष्णा विशेष थी जैसा कि इनके चरित्र से ज्ञात होता है और उसके संचय में वे बराबर लगे रहे पर अंत में फल उलटा ही मिला। केवल काव्यकौशल से विनोद की ऐसी बातों को कवितावद्ध करना ही इनका कार्य होगया था कि जिसे सुनकर लोग हँस पड़ें। तात्पर्य यह है कि ये समय के प्रवाह में स्वयं पड़ गए और इतना ऊँचे न उठ सके कि उसे अपने साथ ले चलने का प्रयत्न ही करते। इनकी कृतियों में उच्च कोटि की भी कृतियाँ बहुत है। एक कविसभा में इन्हों ने कुल पाँच शैर की एक ग़ज़ल पढ़ी थी जिसका मतलअ यों है।

लगा के बर्फ़ में साक़ी सुराहिए मै ला।
जिगर की आग बुझे जिससे जल्द वह शै ला॥

जुरअत और मुसहिफ़ी से कवि उपस्थित थे पर सब ने अपनी कविता रख दी कि अब हमलोगों का पढ़ना व्यर्थ है।

इंशा का यौवन काल था जब कि इन्हों ने एक कवि सभा में एक ग़ज़ल पढ़ी जिसका पहिला शैर है—

झिड़की सही अदा सही चीने जबीं सही ।
सब कुछ सही पर एक नहीं की नहीं सही ॥

और जब यह शैर पढ़ा कि—

गर नाज़नी कहे से बुरा मानते हो तुम ।
मेरी तरफ़ तो देखिए मैं नाज़नीं सही ॥

तब उर्दू साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि मिर्ज़ा रफीअ 'सौदा' जो वहाँ उपस्थित थे उन्हों ने कहा कि 'दरईं चे शक' ।

इंशा प्रतिभासंपन्न थे, अनेक देशी भाषा के विज्ञ थे और फारसी तथा अरबी के विद्वान थे। इनमें कविता-चातुरी पूर्ण रूप से थी । क़सीदे पढ़िए और देखिए कि कैसा ओज और जोश है । फारसी उर्दू कहते कहते एकाएक किसी अरब या अफ़गान या तुर्क की बोली सुन लीजिए और कहीं व्रजभाषा, अवधी आदि का स्वाद लीजिए। बेनुक़ते की कविता आदि लिखने में परिश्रम भी खूब किया है और इसी से अपने समय के अमीर खुसरो कहे जाते हैं ।

कुछ लोग का यह आक्षेप है कि इनकी कविता में अशुद्धियाँ आदि है जिनसे वह परवर्ती कवियों के लिए सनद नहीं हो सकती । ये अशुद्धियां अवश्य हैं पर वे इस कारण नहीं आगई हैं कि ये उनसे अनभिज्ञ रहे हों। ये प्रायः निरंकुशता ही के कारण हुई हैं और ये उनका परवाह न कर के छोड़ गए है । केवल ऐसी अशुद्धियों के कारण ऐसा

आक्षेप कुल कविता पर कर देना अनुचित है। इनकी कविता पर अश्लीलता का आक्षेप भी ठीक ही है पर जैसा दिखलाया जा चुका है कि वह समय का प्रभाव था। ठीक उसी समय की दो आख्यायिकाओं की हस्तलिखित प्रतियां मेरे पास हैं जिनके लेखक ने अपना नाम इस प्रकार दिया है—सैयद मुहम्मदअली उर्फ मीर बिस्मिल्ला मुतख़ल्लुस बशायर। आप ने ये पुस्तकें भी तत्कालीन बड़े लोगों के मनोरंजनार्थ लिखी हैं पर स्यात् उसे पढ़ कर अश्लीलता भी लज्जा के मारे रो देगी। जो कुछ हो, अश्लीलता लाना अनुचित ही है पर कवि की स्थिति तथा समय पर विचार करते हुए सम्मति देना ही सम्मत है।

इस प्रकार 'इंशा' की कविता की गुण दोष चर्चा कर लेने पर स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि उर्दू साहित्य-इतिहास में इनका स्थान प्रथम श्रेणी के कवियों में लेने के सर्वथा योग्य है। इनकी उच्च कोटि की कविता उर्दू के अच्छे अच्छे कवियों की रचना के समकक्ष है और उर्दू साहित्य की अमूल्य संपत्ति है।

इंशा का काव्य

[१]

क्यों शहूर छोड़ आबिदं[1] ग़ारे जबलं[2] में बैठा ।
तू ढूँढता है जिसको है वह बग़ल में बैठा ॥
दिल में समा रहा है यों दाग़े इश्क़ अपने ।
जिस तरह कोई भौंरा होवे कँवल में बैठा ॥
सब यार तेरी दम का है यह शुमार जो मैं ।
याँ एक कल में ऊठा और एक कल में बैठा ॥
तारें नफस तरी हाथ अय यार मुझको तूने ।
खींचा तो पल में ऊठा छोड़ा तो पल में बैठा ॥
रहमत ख़ुदा की 'इंशा' सद आफरीं कि तुझसे ।
हर एक क़ाफ़िया क्या गर्म इस ग़ज़ल में बैठा ॥

[२]

खवासे एजाज़[3] ईसवी क्यों न रक्खे साक़ी अयाग़[4] अपना ।
कि मिस्ल ख़ुरशीद चर्ख़े चारम पर इस घड़ी है दिमाग़ अपना ॥

---

१ उपासक । २ पर्वत । ३ वैसा स्वभाव जिससे किसीको मानसिक कष्ट हो । ४ मदिरा पात्र ।

खुदा हि जाने किधर सिधारे शकेबो[1] सब्रो क़रारो ताक़त ।
हर एक उनमें से दे गई हैं हमारे सीनः को दाग़ अपना ॥
जो लोग तशरीफ़ ले सिधारे अदमको उनकी मिले खबर क्या ।
सुनो अचम्भा कि जीते जी है मिला न हमको सुराग़ अपना ॥
शगून का एतमाद क्या है खमोशी है यह ज़ुबां दराज़ी ।
हमारे रोने प मत हँसाकर सम्हाल मुँह ऐ चिराग़ अपना ॥
न टोक उल्फत कि दाग़ को अब नजर लगा मत कहीं तू 'इंशा'।
टुक इसपै अलहम्द[2] फूँक पढ़कर कि हैं यह चश्मो चिराग़ अपना ॥

[३]

परतौ से चाँदनी के है सेहन बाग़ ठंढा ।
फूलों की सेज पर आ करदे चिराग़ ठंढा ॥
शफ़क़त[3] से हाथ तू धर टुक दिलप मेरे ता हो ।
यह आग सा दहकता सीने का दाग़ ठंढा ॥
मै की सुराही ऐसी ला बर्फ में लगाकर ।
जिसके धुँए से होवे साक़ी दिमाग़ ठंढा ॥
तजनीस जिस दुनी की हो जोशे चश्म यारो ।
हमने मुदाम पाया उसका ओजाग़[4] ठंढा ॥

---

१ आनंद । २ ईश्वरकी कृपा है ।
३ प्रेम । ४ चूल्हा ।

हैं एक शख़्श लाते खस की शराब 'इंशा' ।
घो घा गुलाब से तू कर रख अयाग़ ठंढा ॥

[४]

रहरवाने इश्क ने जिस दम अलम आगे धरा ।
सदरः की सायः में दम ले फिर क़दम आगे धरा ॥
तुझ बिन ऐ साकी शराबे सब्ज का सागर नहीं ।
है मेरी आँखो में गोया जामे सुम[1] आगे धरा ॥
देखते ही कुछ लगा त्योरी चढ़ाने कल व शोख़ ।
फूल का दोना जो मैंने करके दम आगे धरा ॥
साईं अल्ला डहडहा सब्जः नहीं दरकार याँ ।
है न यह अफ़्यूँ का घोला बेशो कम आगे धरा ॥
जिसने यारो मुझसे दावा शैर के फ़न का किया ।
मैंने लेकर उसके काग़ज औ क़लम आगे धरा ॥
बैठता है जब तोंदीला शेख आकर बज्म में ।
एक बड़ा मटका सा रहता है शिकम आगे धरा ॥
'सैयद इंशा' वाँ करें हैं सैर बामे अर्श[2] पर ।
याँ कमन्दे आह का है पेचो खम आगे धरा ॥

---

१ विष ।

२ खुदा के बैठने का आसन ।

[५]

मैंने जो आ नशे में बुलबुल का मुँह चिढ़ाया ।
साक़ी ने कहके क़ह क़ह कुल कुल[1] का मुँह चिढ़ाया ॥
अल्लाह हज़रत आदम किस जुज़ का कल था हम में ।
जिस जुज़ ने अपने आख़िर उस कल का मुँह चिढ़ाया ॥
पास उसके ज़ुल्फ़ के जो आए मुझे तो मैंने ।
सौ करके शाख़ सानः सुंबुलका मुँह चिढ़ाया ॥
यह लाल लाल डोरे खिल-खिल के फ़स्ले गुल में ।
नरगिस ने तेरे साक़ी याँ गुल को मुँह चिढ़ाया ॥
कल शेख़ पोपले को एक टूटे पुल के नीचे ।
मैंने कहा कि तुमने इस पुल का मुँह चिढ़ाया ॥
दो बातें फ़ारसी की सीख उसने 'मीर इंशा' ।
बस लखनऊ से सारे काबुल का मुँह चिढ़ाया ॥

[६]

दिल सितमज़दः बेताबियों ने लूट लिया ।
हमारे क़िब्लः को वहाबियों[2] ने लूट लिया ॥
कहानी एक सुनाई जो हीर राँझे की ।
तो अहले-दर्द[3] को पञ्जाबियों ने लूट लिया ॥

---

१ बोतल से शराब उलेड़ने में होने वाला शब्द ।
२ मुसलमानों का एक संप्रदाय विशेष है ।
३ प्रेमपंथवाले ।

यह मौजे लालः खुदरू नसीम से बोले।
कि कोहो दश्त को सैराबियों ने लूट लिया ॥
सबा[1] क़बीलए लैला[2] में उड़ गयी यह ख़बर।
कि नाक़ए[2] नज्द[3] को एराबियों[4] ने लूट लिया ॥
किसी तरह से नहीं नींद आती 'इंशा' को।
उसी ख़याल में बेख्वाबियों ने लूट लिया ॥

[७]

अब की यह सरदी पड़ी हर एक तारा जम गया।
काँसए[5] चर्खे बरीं सारे का सारा जम गया ॥
चाँदसे मुखड़े को उसके देख गिर्दागिर्द से।
चार चार अंगुश्त सूरज का किनारा जम गया ॥
कीमिया का शौक़ था जिनको अकड़ के बुत हुए।
था जहाँ तक शह्र में मौजूद पारा जम गया ॥
सर्द मुहरी से जमानः के न पूछो हाल कुछ।
उसमें जो था आह से निकला शरारा जम गया ॥
आबख़ोरे बर्फ के 'इंशा' को भेजे आपने।
इसके यह मानी कि लो नक्शा तुम्हारा जम गया ॥

---

१ हवा। २ ऊँटनी। ३ एक स्थान।
४ गँवार और जङ्गली।
५ प्याला।

[८]

मिल गए सीने से सीने फिर यह कैसा इज़्तराब[1] ।
मर मिटे पर भी गया अपने न दिल का इज़्तराब ॥
क्यो पड़ी थलकें न आँखें आँसुओं के बोझ से ।
है दिले सद पारः[2] को सीमाब[3] का सा इज़्तराब ॥
रूस का यह हाल है याँ क़ाफ़िलः से पड़ के दूर ।
कर रही हो जिस तरह महमिल[4] में लैला इज़्तराब ॥
पूछते क्या हो कि तेरे दिल में क्या है मुझसे कह ।
और क्या याँ ख़ाक होगी जोश है या इज़्तराब ॥
दम लगा घुटने अजी मैं क्या कहूँ कल रात को ।
तुम ने आए तो किया याँ जी ने क्या क्या इज़्तराब ॥
क्या ग़ज़ब था फाँद कर दीवार आधी रात को ।
धम से मेरा कूदना और वह तुम्हारा इज़्तराब ॥
था वह धड़का पर मज़े के साथ सदक़ः उसके जी ।
फिर करे अपने नसीब अल्लाह वैसा इज़्तराब ॥
उसकी चाहत में जवानी अपनी जो थी चल बसी ।
है पर अब तक जी को जैसे का हि तैसा इज़्तराब ॥
पीर मुर्शिद का यह मिसरा हस्ब हाल 'इंशा' के है ।
मर मिटे पर भी गया अपने न दिल का इज़्तराब ॥

---

१ घबड़हट । २ सौ टुकड़ा ।
३ पारा । ४ ऊँट पर बाँधी जाने वाली अमारी ।

[९]

नहीं चाहिये शर्म इतनी बहुत ।
कि मजलिस में बन बैठिए जैसे बुत ॥
बनाते हैं हम तुमको क्या शेख़ जीउ ।
ज़रा आने दीजे तो होली की रुत ॥
बहम सब्रो शोरिस की क्योंकर बने ।
कि यह कम से कम वह बहुत से बहुत ॥
कुँवर जी भी ठाकुर के ऐसेही हैं ।
हनूमान जैसे महेशर के सुत ॥
गज़ल लिख अब 'इंशा' तू एक और भी ।
कि यह क़ाफिया है अनोखी अछुत ॥

[१०]

यों तेरी खूँख्वार आँखों का है क़ातिल रंग सुर्ख़ ।
सैद[१] के लोहू से जों शाहीं[२] का होवे चंग सुर्ख़ ॥
रहनवरदाने-जुँनूँ[३] की दौलते पाबोस से ।
हो गई दश्ते तलब की सैकड़ों फरसंग सुर्ख़ ॥
खूँ चकाँ आँखों से गर क़तरा गिरे तो हो वहीं ।
रोंदो, नीलो, दज्लओ, बसते फ़रातो, गंग[४] सुर्ख़ ॥

---

१ शिकार । २ एक अहेरी पक्षी ।
३ प्रेमोन्मत्तता के मार्ग के पथिक गण ।
४ नदियों के नाम ।

मौसिमे होली में देखा हमने क्या है लुत्फ़ वाह ।
रंग से तेरे हुआ जब तुर्रए सर रंग सुर्ख़ ॥
फ़ायदा क्या मय से कर लेवेंगे उसके लुत्फ़ को ।
ग़ैरते चश्मो हयाओ शर्मो आरो नंग सुर्ख़ ॥
बादः नोशी शब को की थी तूने शायद ग़ैर साथ ।
है तेरा चेहरः जो कुछ, ऐ तिफ्ल ! शोख़ो संग सुर्ख़ ॥
ख़ूने आशिक़ आ चढ़ा आँखों में उस क़ातिल के आह !
कर सके यों वर्ना कब 'इंशा' ख़ुमारे भंग सुर्ख़ ॥

[११]

हल्के फुलके जो मिले दैर के रोड़े पत्थर ।
चूम औ चाट के मैं काबे के छोड़े पत्थर ॥
दफ़्न है कोहकन ग़मज़दः जिस जा ऐ चर्ख़ ।
रख दे लोहू भरे, वाँ लाके तू थोड़े पत्थर ॥
दोस्तो सन्दले साईदः से क्या होता है ।
हो रहे हैं मेरे सीने के दिदोड़े पत्थर ॥
रक्त आई न तुझे हाल पै मेरे सच है ।
हो जो पत्थर उसे क्या कोई निचोड़े पत्थर ॥
हाथ टुक मुझ से मिलाते ही यह फ़र्माने लगे ।
तुझ से पञ्जः वह करै जो कि मड़ोड़े पत्थर ॥
काँवरू देस में मत जाइयो ऐ साहबे फ़ौज ।
ज़ोरे जादू से वहाँ होते हैं थोड़े पत्थर ॥

तौसने फ़िक्र अदू अपने रह अञ्जाम के साथ ।
पहुँचे तब जब कि चलें खाने से कोड़े पत्थर ॥
घूर उन्हें हाय सनम मैंने कहा तो बोले ।
मैं तो इनसान हूँ हो तू ही निगोड़े पत्थर ॥
भटकटैया के अरे काँटे पड़ें मुट्ठी ख़ाक ।
राई औ नोन तेरे दीदों में थोड़े पत्थर ॥
वह भरी गोद दिखा बोले कि ऐ दीवानः ।
फोड़े सर अपना तो ले और भी थोड़े पत्थर ॥
साँप सी तेरी मगर जुल्फ़ खुली नह्र के बीच ।
चादरे आब ने टकरा के जो फोड़े पत्थर ॥
लहर ऐसीही चढ़ी मौज को जिससे कि वहीं ।
मुँह पः कफ़ जोश से ला उसने झिंझोड़े पत्थर ॥
मारफ़त की वह ग़ज़ल अब तो सुना दे 'इंशा' ।
जिसको सुन सूफ़ियों ने सर से हों फोड़े पत्थर ॥११॥

[१२]

रातों को न निकला करो दरवाज़ः से बहार ।
शोखी में धरो पाँव न अन्दाजः से बाहर ॥
जर्राह न रख पुम्बओ[१] मरहम कि यहाँ आग ।
निकले है हर एक ज़ख्म तरो ताज़ा से बाहर ॥

---

१ रूई ।

ले क़ैस मुबारक हो कि लैला निकल आई ।
पर्दे को उठा महमिले जम्माज़ः[1] से बाहर ॥
लेते वह जम्हाई हैं तो गोया कि नज़ाकत ।
टपकी पड़े है शोख़िए ख़म्मियाज़ः[2] से बाहर ॥
गो ग़ैर ने आवाज़ः कसा उसकी गली में ।
पर मैं कोई निकलू हूँ इस आवाज़ः से बाहर ॥
नारङ्गी के छिलके थे मगर इत्र में डूबे ।
बू बास यह थी अदविअए ग़ाज़ः[3] से बाहर ॥
रहती है सदा ख़्वाहिशे अहबाब से 'इंशा ।
अजज़ा मेरे दीवान के शीराज़ः से बाहर ॥१२॥

[१३]

माँगा जो मैने बोसः उनसे चमन के अन्दर ।
बोले कि याँ नहीं चल मच्छीभवन के अन्दर ॥
शोले भड़क रहे हैं याँ अपने तन के अन्दर ।
दूँ[4] लग रही हो जैसे गर्मी से बन के अन्दर ॥
है ख़ाल यों तुम्हारे चाहे ज़क़न के अन्दर ।
जिस रूप हो कन्हैया आबे जमुन के अन्दर ॥

---

१ शीघ्रगामी ऊँट ।
२ अँगड़ाई । ३ उबटन ।
४ अग्नि ।

जो चाहो तुम सो कह लो चुप चाप हैं हम ऐसे ।
गोया ज़ुबाँ नहीं है अपने दहन के अन्दर ।।

क्या बात की जगह है छिपने की झाड़ नीचे ।
मेहदी की टट्टियों की ओझल चमन के अन्दर ।।

गुल से ज़ियादः नाज़ुक जो दिलबराने रमना ।
हैं बेकली में शबनम के पैरहन के अन्दर ।।

है मुझ को यह तअज्जुब सोवेंगे पाँव फैला ।
यह रंग गोरे गोरे क्योंकर कफ़न के अंदर ।।

काफ़िर समा रहा है सारङ्ग का यह लहरा ।
तबले की तालो सुम की हर हर बरन के अंदर ।।

सौ चिलमनों के बाहर मुतरिब जो गा रहा है ।
आती है किस मज़े से आवाज़ छन के अंदर ।।

ग़म ने तेरे चिढ़ाया ऐ माहे-मिस्र[1] ख़ूबी ।
याक़ूब वार हमको बैतुल हज़ने[2] के अंदर ।।

मुँह चंग बीच तेरे मुतरिब य तार यों है ।
काँटा लगा हो जैसे काली के फन के अंदर ।।

बल बे तेरा अकड़ना ले हाथ में तपंचः ।
और जाके बैठना यों मजलिस में तन के अंदर ।।

---

१ यूसुफ़ । २ कष्ट का घर ।

सूझी तो दूर की थी कहता नहीं व लेकिन ।
इतना तो मैं कहूँगा इस अंजुमन के अंदर ॥
वह चीज़ नाम जिसका लेना नहीं मुनासिब ।
सो तेरे रूखे सूखे इस बाँकपन के अंदर ॥
यों बोलते कहे है सुनते हो 'मीर इंशा' ।
हैं तुर्फ़ा हम मुसाफ़िर अपने वतन के अंदर ॥१३॥

[१४]

ऐ दिल समझ के उसके तू ज़ुल्फ़े रसा को छेड़ ।
कंबख़्त क्या करे है न काफ़िर बला को छेड़ ॥
ग़ुंचों को रौंद गुल को मसल औ सबा को छेड़ ।
लेकिन न उसके उक़दए बन्दे क़बा को छेड़ ॥
मैं फ़ुन्दुक़ी[1] जो उनकी बनाने लगा तो वह ।
बोले कि चल परे हो न मेरी हिना को छेड़ ॥
क्या गा रहा है अपनी उपज ऐ हुदासरा[2] ।
जिससे कि क़ैस लोट हुआ उस सदा को छेड़ ॥
नालों से मेरे बहसी जो बुलबुल तो बोले आप ।
वाह ऐ उजड़ गए न मेरे आशना को छेड़ ॥

---

१ उँगलियों का सिरा जिसमें मेहदी लगी हो ।

२ वह गाना गानेवाला जो ऊँटवान ऊँट हाँकते समय गाते हैं ।

शोरीदगाने इश्क से बातों में मत उलझ ।
ऐ बेअदब परे, न गरोहे–खुदा को छेड़ ॥
ऐ हमनशीं यह मौसिमे होली है इन दिनों ।
मंजूर है जो सैर तौ उस खुशअदा को छेड़ ॥
लेकिन कुछ और साँग न ला सर पःअपने अब ।
नीला कसाबा बाँध के उनके ददा को छेड़ ॥
चमका न मेरे सामने ऐ मेह्‌ आइनः ।
कहता हूँ बात मान न अह्‌ले सफ़ा को छेड़ ॥
'इंशा' जो होनी हो सो हो दिल तो कहे है यों ।
ता चन्द ज़ब्त आज तू उस दिलरुबा को छेड़ ॥
ले जाके चुपके चुपके दुशाले के नीचे हाथ ।
नाखुन गड़ा के चुटकी ले अंगुश्तपा को छेड़ ॥

[१५]

बहुत गनीमत कि खुद बदौलत ने याँ जो की एक दम नेवाजिश ।
कमाल इलताफ़ो मेह्‌बानी बड़ी तवज्जोह करम नेवाज़िश ॥
गुलाम बे दाम जी से फ़िद्वी मुहिब्बे सादिक़ रुजूअ हाज़िर ।
ग़ज़ब है उसपर भी मेरे हक़ में जो आप फ़रमावें कम नेवाज़िश ॥
वही तफक्कुद[1] वही तलत्तुफ़[2] जो आप अगली तरह से रखते ।
तो बन्दः खाना में मेरे करते भला यह क्यों दर्दो ग़म नेवाज़िश ॥

---

१ दया । २ कृपा ।

बिरहमनाने कनश्त बोले मुझे जो कल राह में मिले सब।
कभी तो अज़ बहरे सैर कीजे बसूए बैतुल् सनम नेवाज़िश॥
किसी के ख़त में सलाम आगे कभी जो लिखते थे वहभी छूटा।
ग़रज़ कि तुम हम को ऐसे भूले गई वह सब यक क़लम नेवाज़िश॥
सभों से ख़लतः[1] गुरेज़ हम से यही तो है बात अपने ढब की।
सितम जो मख़सूस एकपर हो समझ कि है वह सितम नेवाजिश॥
तसद्दुक़ अपने खुदा की जाऊँ कि प्यार आता है मुझको 'इंशा'।
इधर से ऐसे गुनाह पैहम उधर से वह दम ब दम नेवाज़िश॥

[१६]

फैले डलक से साअदे[2] नाज़ुक बदन की बेल।
चम्पाकली से आन भिड़ नौरतन की बेल॥
कल तुझको देखते ही लजालू की तरह से।
इक बारगी सिमट गई इस अंजुमन की बेल॥
यह आह पुर शरारः चले दाग़े दिल से यों।
सूरज से जैसे फूट के निकले किरन की बेल॥
रासो ज़नबै[3] की शक्ल यह चोटी है ऐ परी।
फबती है उसको कहिये जो सूरज गहन की बेल॥

---

१ मिलना। २ हाथ।

३ आकास में तारों का झुंड जो रास अर्थात् नेवला और ज़नब अर्थात् सर्प की शक्ल का होता है।

शादी मुबारक आके लगी गाने अन्दलीब ।
लहरा गई खुशी से हर एक इस चमन की बेल ॥
बोल उट्ठी बनकी डोमनियाँ सारी कुमारियाँ ।
साहब हमें दिलाइए दूल्हा दूल्हन की बेल ॥
'इंशा' यह नौ उरूस ग़ज़ल हाथ क्या लगे ।
गोया कि अब मँढ़े चढ़ी अपने सखुन की बेल ॥

[१७]

वह देखा ख्वाब क़ासिर जिससे है अपनी ज़बाँ और हम ।
कि गोया एक जा है उसमें है वह नौजवाँ और हम ॥
वह रह रह मुझसे कहता है खुदा की बातें हैं वरनः ।
भला टुक दिल में अपने गौर कर तो यह मकाँ और हम॥
जो पूछा कैस से लैला ने जङ्गल में अकेली हो ।
तो बोले ए नहीं वहशत है और आहो फुगाँ और हम ॥
अजी गडबड रही है अक्ल अपनी सब फरिश्तों से ।
पड़े फिरते हैं बाहम सैर करते कुदसियाँ और हम ॥
नशा है आलमे मस्ती है बकै़दी है रिंदी है ।
कहाँ अब जेहदो तकवा[1] है ख़राबाते मुगाँ[2] और हम ॥
नयाबत हमको रुज्वाँ की मिली मौला के सदके से ।
वगरनः ओहदए दरबानिए बाग़े जिनाँ और हम ॥

---

१ संयम। २ अग्नि पूजक।

अजब रङ्गीनियाँ बातों में कुल होती है ए 'इंशा' ।
बहम हो बैठते हैं जब सआदतयार खाँ और हम ॥

[१८]

कुछ निगाहें तेरी ऐसी हि हुनर से लड़ियाँ ।
कि झड़े नूरही की क़र्स क़मर से लड़ियाँ ॥
यह जो चिलमन से कोई शख्स उधर झाँके है ।
फुरतियाँ उसकी मेरे दीदए तर से लड़ियाँ ॥
जमा हूरें थीं यह किस वास्ते ऐ शबनमे रात ।
चितवनें जिनकी मेरे तारे नज़र से लड़ियाँ ॥
किस का यह ब्याह था जो मोतियों के सेहरा के ।
अब तलक झड़ते हैं दामाने सहर से लड़ियाँ ॥
आहें 'इंशा' की लड़ीं शोखियों से बर्क़ के या ।
फौजें हूरों की बहम उड़ती हैं फ़र्र से उड़ियाँ ॥

[१९]

कैसे कहूँ न हम में तुम में लड़ाइयाँ हों ।
जब खिलखिला के हँस दो बाहम सफ़ाइयाँ हों ॥
क्योंकर न गुदगुदाहट हाथों में उसके उट्ठे ।
वह गोरी गोरी रानें जिसने दबाइयाँ हों ॥
जी चाहता है बोलें पर बोलते नहीं हैं ।
होवें अगर तो बाहम ऐसी रुखाइयाँ हों ॥

मुमकिन है कोई हमसे अफ़शाये राज़ होवे ।
सौ बार ठंढी साँसें गो लब तक आइयाँ हों ॥
क्योंकर जनूँ मुजस्सिम होकर न दे दिखाई ।
जब शोरिशों ने दिल की धूमें मचाइयाँ हों ॥
नाज़ो करश्मः वैसा सज धज ग़ज़ब यह जिसमें ।
और यह नमक यह गर्मी यह खुश अदाइयाँ हों ॥
चितवन में वह लगावट सुरमः की वह घुलावट ।
फिर क़हर यह सजावट यह अचपलाइयाँ हों ॥
मर जाइए न क्योंकर ऐसे पः हुये बेज़ालिम ।
जिसमें इकट्ठी इतनी बातें समाइयाँ हों ॥
पढ़ और भी ग़ज़ल एक 'इंशा' इसी तरह से ।
तब शायरों के आगे तेरी बड़ाइयाँ हों ॥

[२०]

फबन अकड़ छब निगाहो सज धज जमालो तर्ज़ो ख़िराम आठों ।
न होवें उस बुत के गर पुजारी तो क्यों हो मेले का नाम आठों ॥
ज़क़न[१] ज़नख़्दाँ[२] लबो दहानो रुख़ो जबीनो[३] नमक तबस्सुम ।
सिखाती हैं उस परी को काफ़िर यह मिल के सब क़त्ले आम आठों ॥
अदाओ नाज़ो हेजाबो ग़मज़ः करश्मो शोख़ी हया तग़ाफ़ुल ।
तुम्हारे चितवन के आगे आगे यह करते हैं एहतमाम आठों ॥

१-२ ठुड्ढी । ३ कपोल ।

झझक लगावट चमक झमकड़ा मलाल गुस्सा करम रुकावट ।
किसी की बातों पः करते हैं याँ किसी का जी है तमाम आठों ॥
शिकेबो[1] सब्रो क़रारो ताक़त निशातो[2] आरामो ऐश राहत ।
तुम्हारे उल्फ़त में खोके बैठा हूँ मैं तो अब लाकलाम आठों ॥
सरीरो चत्रो क़ुशूनो[3] मुल्को शिकोहो ताजो कमालो सेहत ।
मेरे सुलेमाँ को दे ख़ुदाया यह जल्द बा एहतशाम[4] आठों ॥
न पूछ मुझसे तू सैयद 'इंशा' कि नाम आशिक के क्या हैं वहशी ।
ज़लीलो रुसवा ख़राबो ख़िस्तः ग़रीब बन्दः ग़ुलाम आठों ॥

[२१]

देखकर एक दो जनों की रंग रलियाँ बाग़ में ।
खिलखिला के हँस पड़ीं फूलों की कलियाँ बाग़ में ॥
थक गईं लेले बलाएँ कुमरियाँ और बुलबुलें ।
तुमने दी अपनी जो मुझको मुँह की डलियाँ बाग़ में ॥
क्या हुआ जो बन्द दरवाज़ा किया ऐ बाग़बाँ ।
खिल रही हैं हर रगे गुल की तो कलियाँ बाग़ में ॥
नरगिसिस्ताँ पर जो आलम ख़्वाब का सा छा गया ।
ली जम्हाई अपनी आँखें किसने मलियाँ बाग़ में ॥
हर रविश पर लग गई मुक्कैश की तारों के ढेर ।
कुछ परीज़ादें जो अपने साथ चलियाँ बाग़ में ॥

---

१ संतोष । २ आराम । ३ सेना । ४ शानो शौकत ।

फल किसी ढब का न तोड़ 'इंशा' किसी को दुख न दे ।
ता दुआ तुझको करें सब फूल फलियाँ बाग़ में ॥
क्यों न हों हर गुल के जोड़े आज अफ़शाँ बाग़ में ।
मिल के होली खेलती हैं आज परियाँ बाग़ में ॥
आज शायद उर्स बुलबुल का हुआ है ऐ नसीम ।
आतिशे गुल ने किया है जो चिराग़ाँ बाग़ में ॥

[२२]

काम फर्माइये किस तर्ह से दानाई को ॥
लग गई आग है याँ सब्रो शिकेबाई को ।
इश्क़ कहता है कि यह वहशत से जुनूँ के हक़ में ।
छेड़ मत मजनूँ जली मेरे बड़े भाई को ॥
क्या खुदाई है मुँडाने लगे अब ख़त को व लोग ।
देखकर ढोड़े में छिप रहते थे जो नाई को ॥
वादः करता है कि ग़ेज़ालाने हरम के आगे ।
किसने यह बात सिखाई तेरे सौदाई को ॥
गर्चे हैं आबलःपा दस्त जुनूँ के ऐ ख़िज्र ।
तौ भी तैय्यार हैं हम मरहलः पैमाई को ॥
एक बगूला जो फिरा नाक़ए लैला के गिर्द ।
याद कर रोने लगी अपने वह सहराई को ॥

मस्त जारोबकशी[1] करते हैं याँ पलकों से।
काबः कब पहुँचे है मैख़ाना की सुथराई को॥
जी में क्या आ गया 'इंशा' के यह बैठे बैठे।
कि पसंद उसने किया आलमे-तनहाई को॥

[२३]

महफ़ूज रंज क़हत से रक्खे जो ख़ल्क़ को।
लारेब[2] है वह यूसुफ़े कनआँ ब अयनहू॥
आलम में जिसको ऐसी सआदत अली ने दी।
मानिन्द अब्र है वह दुर अफ़शाँ बअयनहू॥
'इंशा' रहे वह ता सदो सी साल जिससे है।
हिन्दोस्ताँ मुकाबिल ईराँ बअयनहू॥

[२४]

गैर के मोढ़े प तुम हाथ जो धर बैठ गये।
साथवालों को न पूछा कि किधर बैठ गये॥
कुछ सफ़ सद्रो नआल अपनी नहीं खातिर में।
मस्त मदहोश हैं हम बैठे जिधर बैठ गए॥
आह जूँ शोला न बालीदः[3] हुये अख़गरे दिल।
कुछ चमक अपनी दिखा मिस्ले शररे[4] बैठ गये॥

---

१ झाड़ू देना।
२ निश्चयतः।
३ बढ़ता हुआ।
४ चिनगारी, प्रेमांकुर।

ज़ोफ़ इस हद से हमें है कि कहीं गर आया ।
सायः वो तकियए दीवार नजर बैठ गये ॥
ताक़ते तैए मुसाफ़त नहीं अब हम तो यहाँ ।
थक के ऐ क़ाफ़िला–सालारे–सफ़र बैठ गये ॥
मैं यह ताजीम समझता हूँ सुनो, बन्दःनेवाज ।
आप उठते थे मुझे देख के पर बैठ गये ॥
अपनी मजलिस में मुझे देख के ग़ैरों से कहा ।
देखियेगा इन्हें क्या होके निडर बैठ गए ॥
उठ के दिलदार को रुख़सत तो किया पर व वहीं ।
रख के हम दस्ते तास्सुफ़[1] को बसर बैठ गए ॥
सुन के यह तेरी ग़ज़ल बज़्म में 'इंशा' शब को ।
सुस्तएद उठने पः थे अह्ले हुनर बैठ गये ॥

[२५]

तपिशे दिल ही से हम मिल के गले बैठे हैं ।
छेड़ मत शोलए गुल बस कि जले बैठे हैं ॥
आह की धूनी लगा दर पः मेरे ख़ाकनशीं ।
राख जोगी की तरह मुँह को मले बैठे हैं ॥
सर्दिओ गर्मिओ बरसात जो हो या क़िस्मत ।
तेरी दीवाल के हम सायः तले बैठे हैं ॥

---

१ शोक, अफसोस ।

पासबानों ने बहुत आके उठाया हमको ।
अपने हम दिल की बिठाई से दबे बैठे हैं ॥
आप जो चाहिये फरमाइये हम तो चुपके ।
क्या करें खैर जो कुछ बस न चले बैठे हैं ॥
दरो दौलत से तेरे बन्दए दरगाह भी आज ।
टालने से तो किसी के न टले बैठे हैं ॥
सैर गुलशन की न तकलीफ़ हमें दे 'इंशा' ।
कुंज उजलत[1] ही में हम अपने भले बैठे हैं ॥

[२७]

पए ताज़ीम अश्क इस तरह आहे सर्द उठती है ।
कि जैसे क़तरः अफ़शानी से बूए गर्द उठती है ॥
गिरह हसरत की हर तारे नफ़स में पड़ गई जिससे ।
य कैसी हूक हरदम ऐ दिले पुर दर्द उठती है ॥
सियहबख्तों को साथ अपने उठाया दाग़ ग़म ने यों ।
लिपट कर मुह से कागज के जैसे फ़र्द उठती है ॥
हुई उम्मेद हासिल शुक्र जाये गिरियः है लेकिन ।
कि रुखसत के लिए अब यासे ग़म पुर दर्द उठती है ॥
जहूरे महदिये दीं का सुनेंगे आज कल मुज़दः ।
खुदा के फज्ल से अब यह सफे नामर्द उठती है ॥

---

१ एकांतवास ।

नशे में ली है उठते ही निकल पर्दः से मीना के ।
उरूसे[1] शर्म को गर दुख़्ते रज बेपर्द उठती है ॥

खमोश ऐ दिल सदाये दिलखराशे नग़मए बुलबुल ।
बिगुल बाँगे शिगुफ्तः गुन्चहाए दर्द उठती है ॥

तपिश खाकसतरे उश्शाक़ से जूँ शोलए आतिश ।
ज़मिस्ताँ[2] में बहंगामे शर्दीदुलबर्द[3] उठती है ॥

मसीहा का मगर ऐजाज़ है पासों में चौपड़ के ।
कि मरजातेही हो फिर ज़िन्दः हर एक नर्द उठती है ॥

भला टुक बादिये मजनूँ में जा बस आज तक बाँसे ।
सदाये नारः होती है बियाबाँ गर्द उठती है ॥

हनोज़ उस दश्ते ग़ुरबत बीच उसकी खाक आँधी हो ।
बरंगे सुर्खो सब्जो नीलगूनो जर्द उठती है ॥

[२८]

मुझसे फरमाने लगे अब क़द्र जानी आपकी ।
बन्दः किस काबिल है साहब मेहरबानी आपकी ॥

यों को देखा भी नहीं और इख्तलातें औरों से था ।
हो गई मालूम इसमें क़द्रदानी आप की ॥

---

१ दूल्हा दुलहिन । २ जाड़े का ऋतु ।
३ अत्यंत ठंढक । ४ मिलना ।

सुनते ही अहवाल मेरा हँसके यों बोला कि बस ।
खुश नहीं आती है यह मुझको कहानी आप की ॥
अब जहाँ चाहो सिधारो कुछ नहीं है ग़म यहाँ ।
दाग़े दिल रखता हूँ सीनः में निशानी आप की ॥
'सैयद इंशा साहब' आता रहम है मुझको कि हाय ।
कटती है किस दर्दों ग़म में नौजवानी आप की ॥ २८ ॥

[२९]

गाली सही अदा सही चीने-जबीं सही ।
यह सब सही पर एक नहीं की नहीं सही ॥
मरना मेरा जो चाहे तो लगजा गले से टुक ।
अब का भी दम यह मेरा दमे वापिसीं सही ॥
गर नाज़नीं के कहने से माना बुराहो कुछ ।
मेरी तरफ तो देखिये मैं नाज़नीं सही ॥
आगे बढ़े जो जाते हो क्यों कौन है यहाँ ।
जो बात हमको कहनी हो तुमसे नहीं सही ॥
मंजूर दोस्ती जो तुम्हें है हर एक से ।
अच्छा तो क्या मुजायक़ः 'इंशा' से कीं सही ॥२९॥

[३०]

जिस पः एक लौंग वह पढ़कर बुते काहिन[१] मारे ।
भूत हो रात लगे जिन हो उसी दिन मारे ॥

१ जादूगर ।

मैं तो छेड़ा न छुआ हाथ लगाया भी नहीं ।
तौबः दहाड़ आप मचाते हैं अबस बिन मारे ॥
पाँज़दहं[1] साल की एक आफ़ते-जाँ है ज़ालिम ।
जान आशिक़ की भला क्यों न तेरा सिन मारे ॥
इस क़दर हठ न कर ऐ तिफ़्ल सरशक़ ओ बदबख़्त ।
पाँव शोखी में न धर हट तुझे डाइन मारे ॥
मुफ़लिसा बेग जो आशिक हैं कहां पावें ज़र ।
ज़र हो उस पास जो पारे की रसायन मारे ॥
औरभी क़ाफ़ियों में पढ़ ग़ज़ल 'इंशा' वह परी ।
जिसके बस पढ़तेही चिन्घाड़ बड़ा जिन मारे ॥३०॥

[३१]

साँवले पन पर ग़ज़ब है धज बसंती शाल की ।
जी में है कह बैठिये अब जै कन्हैयालाल की ॥
ज़िन्दगी इस तार चंगे आह ने जंजाल की ।
उड़ रही है एक हवा पर पोटली सी राल की ॥
बिन लगावट रह नहीं सकता हमारा दिल कभी ।
क्या तेरी ख़ू पड़ गई कमबख़्त बैतुल माल की ॥
हैं वह जोगी नेहगर अवधूत जिनके सामने ।
बालका देवे जुनूँ वहशत परी है बालकी ॥

---

१ पंद्रह ।

ऐसी घोड़ी पर चढ़ा गर यह नहीं फबती तुझे ।
गर्चे झालरदार है फिर पालगी की पालकी ॥
तू भी है एक शाहेजादः चाहिए तेरे लिये ।
मोरछल दो हों हुमा के और मग़रिक नालकी ॥
क्यों न अंगारे उछाले फिर वह 'इंशा' रात को ।
है हमारी आह शागिर्द अग्गिया बैताल की ॥३१॥

[३२]

टुक एक ऐ नसीम सम्हालले कि बहार मस्ते शराब है ।
व जो हुस्न आलमे नशा है उसे अबकी ऐन शबाब है ॥
यह घटायें छाईं जो कालियां जो हरी भरी हुईं डालियाँ ।
उभर आईं फूलों की लालियां तो बजाय आब शहाब[1] है ॥
यह दोरोजः नश्व नुमा को तू न समझ कि नक्शे पुर आब है ।
यह सुराब[2] है, यह हुबाब है फ़क़त एक क़िस्सए ख़्वाब है ॥
अर्क़े बहार शराब है वह ही आज छिड़केंगे आपपर ।
नतो बेदमुश्क है इसघड़ी न तो केवड़ा न गुलाब है ॥
उन्हें कहने सुनने से बैर है जो खुद आयें सो तो बख़ैर है ।
यह ग़रज कि जोर है सैर है न सवाल है न जवाब है ॥
किधर आऊँ जाऊँ करूँ सो क्या मेरा जी है नाकमें आगया ।
न तो अर्ज़ हाल की ताब है नतो सब्र ख़ाना ख़राब है ॥

---

१ लाल रंग, आग की लपट । २ मृगतृष्णा ।

मुझे वहशो-तैर[1] से रश्क है कि कभी उन्हों को किसी नमत[2] ।
न सवाल है न जवाब है न एजाब है न उक़ाब[3] है ॥
मेरी बात मान सुना दिला न तो अर्जो फर्ज पः जी चला ।
कोई उनके टोके सो क्या भला कि वह आली उनकी जनाब है ॥
अरे 'इंशा' अब जो यह दौर है तेरी वजअ इन दिनों और है ।
यह भी कोई जीस्त का तौर है न शराब है न कबाब है ॥

[३२]

जी चाहता है शेख़ की पगड़ी उतारिये ।
और तान कर चटाख़ से एक धौल मारिये ॥
सोतों को भला पिछले पहर क्यों पुकारिए ।
दरवाजः खुलने का नहीं घर को सिधारिये ॥
क्या सरव अकड़ रहा है खड़ा जूएबार[4] पर ।
टुक आप भी तो इस घड़ी सीनः उभारिये ॥
यह कारखाना देखिये टुक आप ध्यान से ।
बस सुन्न खींच जाइए यहाँ दम न मारिये ॥
नासिह ने मेरे हक़ में कहा अह्ले बज्म से ।
बिगड़े हुये को आह कहाँ तकः सँवारिये ॥

---

१ पशु और पक्षी । २ चाल, दस्तूर ।
३ दुःख । ४ जहाँ नहरें बहुत हों ।

'इंशा' खुदा के फ़ज़्ल पः रखिये निगाह और ।
दिन हँस के काट डालिये हिम्मत न हारिये ॥

[३४]

मुतलक़ मुतवज्जः न हूँ हर चन्द गुज़र जायें ।
सद क़ाफ़िलये लैलिओ मजनूँ मेरे आगे ॥
तुफ भी न करूँ लावह की गो गाव ज़मीं पर ।
लावे कोई गंजीनए क़ारूँ मेरे आगे ॥
है दौरए गेती जो बना यह कर दे शक़ ।
बेशुबहो शक धेले के चूँ चूँ मेरे आगे ॥
बेताबिए दिल देख के सीमाब सी फिर जाये ।
कफ़ लावे अगर मूख़बिर जैहूँ मेरे आगे ॥
है मरहिलए ख़ुम गदीर आँखों में छाया ।
क्यों छिप न रहे ख़ुम में फ़लातूँ मेरे आगे ॥
मैं शाहे ख़ुरासाँ के गुलामों में हूँ 'इंशा' ।
मसरूफ़ रहे मूसओ हारूँ मेरे आगे[१] ॥

[३५]

मिल गये पर हेजाब बाकी है ।
फ़िक्र नाज़ो एताब बाक़ी है ॥

---

१ इस ग़ज़ल के अन्य शैर पृ०६-११ पर दिए जा चुके हैं।

बात सब ठीक ठाक है पः अभी ।
कुछ सवालो जवाब बाक़ी है ॥
गर्चे माजून खा चुके लेकिन ।
दौरे जामें शराब बाकी है ॥
झूठे वादे से उनके यहां अब तक ।
शिकवए बेहिसाब बाक़ी है ॥
गाह कहते हैं शाम हुई अभ्भी ।
ज़र्रए आफ़ताब बाक़ी है ॥
फिर कभी यह कि अब्र में कुछ कुछ ।
परतवे माहताब बाक़ी है ॥
है कभी यह कि तुझ पः छिड़केंगें ।
जो लगन में शहाब बाकी है ॥
और भड़के है इशतियाक़ की आग ।
अब किसे सब्रो ताब बाक़ी है ॥
उड़ गई नींद आँख से किसके ।
लज्ज़ते ख़ुर्दो ख़्वाब बाक़ी है ॥
है ख़ुशी सब तरह की नाहक का ।
ख़तरए इनक़लाब बाक़ी है ॥
है वह दिल की धड़क सो जों की तों ।
जी पर उसका एज़ाब बाक़ी है ॥

जो भरा शीशः था हुआ ख़ाली ।
पर्दः बूए गुलाब बाक़ी है ॥
अपनी उम्मीद थी सो बर आई ।
यास शक्ले सुराब बाक़ी है ॥
है यही डौल जब तक आँखों में ।
दम बसाने हुबाब बाक़ी है ॥
मिस्ल फ़र्मूदए हुज़ूर 'इंशा' ।
फिर वही इज़्तराब बाक़ी है ॥

[३६]

कोई चाहत में किसी शख़्स के बदनाम हो नौज ।[१]
ऐ दवा जान वह कम्बख़्त बड़ा काम हो नौज ॥
मरदुवा मुझसे कहे है चलो आराम करें ।
जिसको आराम वह समझे वह आराम हो नौज ॥
आ गया तेरी रज़ाई में पसीना मुझको ।
गर्म ऐसा भी निगोड़ा कोई हम्माम हो नौज ॥
दिन धराही रहे जी तो बचे ऐ 'इंशा' ।
कलमुही काली बला हाय वह फिर शाम हो नौज ॥

---

१. ३६–३९ तक के ग़ज़ल दीवाने-रेख़्ती से संकलित किए गए है।

[३७]

बाजो के बास में जो रचे एक जने की बास ।
तो ठीक ठीक हो गई दूल्हन पने की पास ॥
हैं याँ धरे जो फूल फफोलों के उनको सूँघ ।
सदक़ा गई थी यह तेरे सूँघने की बास ॥
बटना निगोड़ा कहना भी कुछ लफ्ज़ है भला ।
हम तो यही कहेंगे अजी उबटने की बास ॥
चाहत की आग से यह भुना दिल कि ऐ दवा ।
गोदी में अपने भर गई भूने चने की बास ॥
उस पदमिनी पः आँखों के भौरों की भीड़ है ।
होगी किसी परी में न इस तनतने की बास ॥
फूलों की बू भी फूटै अब 'इंशा' जो तू मना ।
उनमें समा रही थी तेरे रूठने की बास ॥

[३८]

चढ़ के कोठे धूप में तुम तो उड़ाती हो पतंग ।
ऐ दोगाना चाँदनी में याँ उड़ा जाता है रंग ॥
पिघली चांदी की तरह से है थलकती चांदनी ।
आज कोठे पर लगा दो मेरे सोने का पलंग ॥
बात आतू जी की है हरगिज नहीं कुछ मानती ।
सच तो यह है बेगमा तूने बुरे सीखे हैं ढंग ॥

क्या भली लगती है अठखेली किसी की वाह वा ।
और वह नामे खुदा उठती जवानी की उमंग ।।
जान सद्के उस परी के जिनने 'इंशा' से कहा ।
अब तेरे हाथों से यह बंदी बहुत आई है तंग ।।
बेगमा जिस तरह होती है जवानी की उमंग ।
तू उसी ढब से समझ दिल्ली के पानी की उमंग ।।

[३९]

जो हमको चाहे उसका खुदा नित भला करे ।
दूधों नहाये और वह पूतों फला करे ।।
रूठे हुये को किस लिये जाकर मनाइये ।
मिन्नत किसी निगोड़े की अपनी बला करे ।।
झुलसाए उसके मुँह को जो चाहत का नाम ले ।
इस दिल की आँच में कोई कब तक जला करे ।।
कुछ दौड़ तुझसे भी न हुई चल चर्खे दवा ।
वह उड़ गए जो कोई तेरा अरतिला करे ।।
अफसोस उस ख्याल में जो जी में रच गया ।
दोनों यह हाथ कोई कहाँ तक मला करे ।।
दाई के दुश्मनों को निकाले मुए असील ।
कुछ जाके बद्दुआ कहीं कुलकुला करे ।।
आवाज बुझ रही जो दोगाना की आज है ।
'इंशा' से कोई कहदे अब इसका गिला करे ।।

उदैभान-चरित या रानी केतकी की कहानी

यह वह कहानी है कि जिसमें हिन्दी छुट ।
और न किसी बोली का मेल है न पुट ॥

सिर झुका कर नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनाने वाले के सामने जिसने हम सब को बनाया और बात की बात में वह कर दिखाया कि जिसका भेद किसी ने न पाया । आतियाँ जातियाँ जो साँसे हैं । उसके बिन ध्यान यह सब फाँसे हैं । यह कल का पुतला जो अपने उस खेलाड़ी की सुध रखे तो खटाई में क्यों पड़े और कड़ुआ कसैला क्यों हो उस फल की मिठाई चक्खे जो बड़ों से बड़े अगलों ने चक्खी है ।

दोहरा

देखने को दो आँखें दीं और सुनने को दो कान ।
नाक भी सब में ऊँची करदी मरतों को जी दान ॥[1]

---

१ कलकत्ते तथा लखनऊ के संस्करण में दोहरे के स्थान पर गद्य में इस प्रकार दिया है—देखने का तो आँखें दी और

मिट्टी के बासन को इतनी सकत कहाँ जो अपने कुम्हार के करतब कुछ ताड़[1] सके। सच है जो बनाया हुआ हो सो अपने बनानेवाले को क्या सराहे और क्या कहे, यों जिसका जी चाहे पड़ा बके। सिर से लगा पाँव तक जितने रोंगटे हैं, जो सबके सब बोल उठें और सराहा करें और उतने बरसों उसी ध्यान में रहें जितनी सारी नदियों में रेत और फूल फलियाँ खेत में हैं तौ भी कुछ न हो सके, कराहा करें। इस सिर झुकाने के साथही दिन रात जपता हूँ उस अपने दाता के भेजे हुए प्यारे को, जिसके लिए यों कहा है 'जो तू न होता तो मैं कुछ न बनाता' और उसका चचेरा भाई जिसका ब्याह उसके घर हुआ उसकी सूरत मुझे लगी रहती है। मैं फूला अपने आप में नहीं समाता और जितने उनके लड़के बाले हैं उन्हीं की मेरे जी में चाह है और कोई कुछ हो मुझे नहीं भाता। मुझको उस घराने छुट किसी चोर ठग से क्या पड़ी, जीते और मरते उन्हीं सभों का आसरा और उनके घराने का रखता हूँ तीसों घड़ी।[2]

सुनने को कान दिये नाक भी ऊँची सब में कर दी मरतों को जी दान दिये।

१ पाठा० बता।

२ इस सिर झुकाने…तीसों घड़ी–इतना अंश कलकत्ते वाले संस्करण में नहीं है। इसके बाद की हेडिंग भी नहीं है

[डौल डाल एक अनोखी बात का]

एक दिन बैठे बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो। अपने मिलने वालों में से एक कोई बड़े पढ़े लिखे, पुराने, धुराने, डांग, बूढ़े घाग यह खटराग लाए। सिर हिला कर, मुँह थुथा कर, नाक भी चढ़ाकर, आँखें फिरा कर लगे कहने 'यह बात होते देखाई नहीं देती। हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो। बस जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते चालते हैं ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छाँह किसी की न हो, यह नहीं होने का'। मैंने उनकी ठण्डी साँस की फाँस का टहोका खाकर, झुँझलाकर कहा 'मैं कुछ ऐसा अनोखा बढ़ बोला नहीं जो राई को परबत कर दिखाऊँ और झूठ सच बोलकर उँगुलियाँ नचाऊँ और बेसिर बे ठिकाने की उलझी सुलझी बातें सुझाऊँ। जो मुझसे न हो सकता तो यह बात मुँह से क्यों निकालता, जिस ढब से होता इस बखेड़े को टालता'।

और उसके आगे इतना अधिक है—अब यहाँ से लिखनेवाला यों लिखता है कि।

इस कहानी का कहने वाला यहाँ आप को जताता है और जैसा कुछ उसे लोग पुकारते हैं कह सुनाता है। दहना हाथ मुँह पर फेर कर आप को जताता हूँ जो मेरे दाता ने चाहा तो वह ताव भाव और राव चाव और कूद फाँद लपट झपट दिखाऊँ जो देखते ही आपके ध्यान का घोड़ा जो बिजली से भी बहुत चञ्चल अचपलाहट में है हिरन के रूप में अपनी चौकड़ी भूल जाय।

टुक घोड़े पर चढ़ के अपने आता हूँ मैं।
करतब जो कुछ है कर दिखाता हूँ मैं॥
उस चाहने वाले ने जो चाहा तो अभी।
कहता जो कुछ हूँ कर दिखाता हूँ मैं॥

अब आप कान रख के, आँखें मिला के, सन्मुख हो के टुक इधर देखिए, किस ढब से बढ़ चलता हूँ और अपने फूल को पंखड़ी जैसे होंठों से किस किस रूप के फूल उगलता हूँ।

[कहानी के जोबन का उभार और बोल चाल की दूल्हन का सिंगार]

किसी देस में किसी राजा के घर एक बेटा था। उसे उसके माँ बाप और सब घर के लोग कुँवर उदैभान करके पुकारते थे। सचमुच उसके जोबन की जोत में सूरज की एक सोत आ मिली थी। उसका अच्छापन और भला लगना

कुछ ऐसा न था जो किसी के लिखने और कहने में आ सके। पन्द्रह बरस भरके उननें सोलहवें में पाँव रक्खा था। कुछ यों ही सी उसकी मसें भीनती चली थीं। अकड़ तकड़ उसमें बहुत सारी[1] थीं। किसी को कुछ न समझता था पर किसी बात के सोच का घर घाट न पाया था और चाह की नदी का पाट उनने देखा न था। एक दिन हरियाली देखने को अपने घोड़े पर चढ़ के उसे अठखेल और अल्हड़पन के साथ देखता भालता चला जाता था। इतने में जो एक हिरनी उसके सामने आई तो उसका जी लोट पोट हुआ। उस हिरनी के पीछे सबको छोड़ छाड़ कर घोड़ा फेंका। भला कोई घोड़ा उसको पा सकता था? जब सूरज छिप गया और हिरनी आँखों से ओझल हुई तब तो कुँवर उदैभान भूखा प्यासा उनींदा, जँभाइयाँ और अँगड़ाइयाँ लेता हक्का बक्का होके आसरा लगा ढूँढने। इतने में अमरइयाँ ध्यान चढ़ीं उधर चल निकला तो क्या देखता है जो चालीस पचास रण्डिया एक से एक जोबन में अगली झूला डाले पड़ी झूल रही हैं और सावन गातियाँ हैं। ज्यों ही उन्होंने उसको देखा-तू कौन? तू कौन? की चिंघाड़ सी पड़ गई। उन सभों में एक के साथ उसकी आँख लग गई।

---

१ पाठा० समा रही।

दोहरा

कोई कहती थी यह उचक्का है ।
कोई कहती थी एक पक्का है ॥

वही झूलने वाली लाल जोड़ा पहने हुए जिसको सब रानी केतकी कहती थीं उसके भी जी में उसकी चाह ने घर किया पर कहने सुनने को बहुत सी नाह नूह की और कहा 'इस लग चलने को भला क्या कहते हैं । हक न धक जो तुम झट से टपक पड़े यह न जाना जो यहाँ रण्डियाँ अपने झूल रही हैं, अजी तुम जो इस रूप के साथ बेधड़क चले आए हो ! ठण्डे ठण्डे चले जाओ'। तब कुँवर ने मसोस के मलौला खा के कहा 'इतनी रुखाइयां न दीजिये । मैं सारे दिन का थका हुआ एक पेड़ की छाँह में ओस का बचाव करके पड़ रहूँगा । बड़े तड़के धुँधलके में उठ कर जिधर को मुँह पड़ेगा चला जाऊँगा । कुछ किसी का लेता देता नहीं । एक हिरनी के पीछे सब लोगों को छोड़ छाड़ कर घोड़ा फेंका था—कोई घोड़ा उसको पा सकता था ? जब तलक उजाला रहा उसीके ध्यान में था । जब अँधेरा छा गया और जी बहुत घबरा गया इन अमरइयों का आसरा ढूँढकर यहाँ चला आया हूँ । कुछ रोक टोक तो इतनी न थी जो माथा ठनक जाता और रुक रहता । सर उठाए हाँपता हुआ चला

आया। क्या जानता था यहाँ पदमिनियाँ पड़ी झूलती पेगैं चढ़ा रही हैं पर यों बदी थी बरसों मैं भी झूला करूँगा'।

यह बात सुन कर वह जो लाल जोड़े वाली सब की सिर धरी थी उनने कहा 'हाँ जी, बोलियाँ ठोलियाँ न मारो और इनको कहदो जहाँ जी चाहे अपने पड़ रहें और जो कुछ खाने पीने को माँगे सो इन्हें पहुँचा दो। घर आए को आज तक किसी ने मार नहीं डाला। इनके मुँह का डौल, गाल तमतमाए, और होंठ पपड़ाए, और घोड़े का हाँपना, और जी का काँपना और ठण्डी साँसें भरना और निढ़ाल गिरे पड़ना इनको सच्चा करता है। बात बनाई हुई और सचौटी की कोई छिपती नहीं, पर हमारे और इनके बीच कुछ ओट कपड़े लत्ते की करदो'। इतना आसरा पाके सबसे परे जो कोने में पाँच सात पौदे थे उनकी छाँव में कुँवर उदैभान ने अपना बिछौना किया और कुछ सिरहाने घर कर चाहता था कि सो रहें पर नींद कोई चाहत की लगावट में आती थी? पड़ा पड़ा अपने जी से बातें कर रहा था। जब रात साँय साँय बोलने लगी और साथवालियाँ सब सो रहीं रानी केतकी ने अपनी सहेली मदनबान को जगा कर यों कहा 'अरी ओ तूने कुछ सुना है। मेरा जी उस पर आ गया है। और किसी डौल से नहीं थम सकता। तू सब मेरे भेदों को जानती है। अब जो होनी हो सो हो। सिर

रहता रहे जाता जाय मैं उसके पास जाती हूँ । तू मेरे साथ चल, पर तेरे पाँवों पड़ती हूँ कोई सुनने न पाए । अरी यह मेरा जोड़ा मेरे और उसके बनानेवाले ने मिला दिया । मैं इसी जी में इन अमरइयों में आई थी ।' रानी केतकी मदन बान का हाथ पकड़े हुए वहाँ आन पहुँची ही जहाँ कुँवर उदैभान लेटे हुए कुछ कुछ सोच में बड़ बड़ा रहे थे । मदन बान आगे बढ़ के कहने लगी 'तुम्हें अकेला जानकर रानी जी आप आई हैं' । कुँवर उदैभान यह सुनकर उठ बैठे और यह कहा 'क्यों न हो जी को जी से मिलाप है' । कुँवर और रानी दोनों चुपचाप बैठे पर मदनबान दोनों को गुदगुदा रही थी । होते होते रानी का यह पता खुला कि राजा जगत परकास की बेटी हैं और उनकी मां रानी कामलता कहलाती हैं । 'उनको उनके मां बाप ने कह दिया है एक महीने पीछे अमरइयों में जा कर झूल आया करो । आज वही दिन था सो तुमसे मुठभेड़ हो गयी । बहुत महाराजों के कुँवरों से बातें आईं पर किसी पर इनका ध्यान न चढ़ा। तुम्हारे धन भाग जो तुम्हारे पास सबसे छुप के मैं जो उनके लड़कपन की गोइयाँ हूँ मुझे अपने साथ लेके आई हैं । अब तुम अपनी बीती कहानी कहो तुम किस देस के कौन हो ।' उन्होंने कहा 'मेरा बाप राजा सूरजभान और मां रानी लछमीबास हैं । आपस में जो गठ जोड़ हो जाय तो कुछ अनोखी

अचरज और अचम्भे की बात नहीं। योंही आगे से होता चला आया है। जैसा मुँह वैसा थप्पड़ जोड़ तोड़ टटोल लेते हैं। दोनों महाराजों को यह चित चाही बात अच्छी लगेगी पर हम तुम दोनों के जी का गाठजोड़ा चाहिए।' इसी में मदनबान बोल उठी 'सो तो हुआ अपनी अपनी अंगूठियाँ हेरफेर कर लो और आपस में लिखौती भी लिख दो फिर कुछ हिचिर मिचिर न रहे।' कुँवर उदैभान ने अपनी अंगूठी रानी केतकी को पहना दी, और रानी ने भी अपनी अंगूठी कुँवर की उंगली में डाल दी और एक धीमी से चुटकी भी ले ली। इस में मदन बान बोली 'जो सच पूछो तो इतनी भी बहुत हुई मेरे सर चोट है इतना बढ़ चलना अच्छा नहीं अब उठ चलो और इनको सोने दो और रोएँ तो पड़े रोने दो बात चीत तो ठीक हो चुकी।' पिछले पहर से रानी तो अपनी सहेलिओं को लेके जिधर से आई थी उधर को चली गयी और कुँवर उदैभान अपने घोड़े को पीठ लगा कर अपने लोगों से मिलके अपने घर पहुँचे।

पर कुँवर जी का रूप क्या कहूँ कुछ कहने में नहीं आता। न खाना न पीना न मग चलना न किसी से कुछ कहना न सुनना जिस ध्यान में थे उसी में गुथे रहना और घड़ी घड़ी कुछ सोच कर सिर धुनना। होते होते लोगों में इस बात की चरचा फैल गई। किसी किसी ने महाराज और महारानी से

कहा 'कुछ दाल में काला है। वह कुँवर उदैभान जिससे तुम्हारे घर का उजाला है इन दिनों में कुछ उसके बुरे तेवर और बेडौल आँखे दिखाई देती हैं। घर से बाहर पाँव नहीं धरता। घरवालियाँ जो किसी डौल से बहलातियाँ हैं तो और कुछ नहीं करता ठँढी ठँढी साँसे भरता है और बहुत किसी ने छेड़ा तो छपरखट पर जाके अपना मुँह लपेट के आठ आठ आँसू पड़ा रोता है।' यह सुनते ही कुँवर उदैभान के माँ बाप दोनों दौड़ आए, गले लगाया, मुँह चूम पांव पर बेटे के गिर पड़े हाथ जोड़े और कहा 'जो अपने जी की बात है सो कहते क्यों नहीं क्या दुखड़ा है जो पड़े पड़े कराहते हो राज पाट जिसको चाहो दे डालो कहो तो तुम क्या चाहते हो, तुम्हारा जी क्यों नहीं लगता? भला वह क्या है जो हो नहीं सकता मुँह से बोलो जी खोलो। जो कुछ कहने से सोच करते हो अभी लिख भेजो। जो कुछ लिखोगे ज्यों के त्यों करने में आयेगी। जो तुम कहो कुँए में गिर पड़ो तो हम दोनों अभी गिर पड़ते हैं, कहो सिर काट डालो तो सिर अपने अभी काट डालते हैं।' कुँवर उदैभान जो बोलते ही न थे लिख भेजने का आसरा पाकर इतना बोले 'अच्छा आप सिधारिए मैं लिख भेजता हूँ पर मेरे उस लिखे को मेरे मुँह पर किसी ढब से न लाना इसी लिए मैं मारे लाज के मुख पाट होके पड़ा था और आप से कुछ न कहता था।' यह

सुनकर दोनों महाराज और महारानी अपने अपने स्थान को सिधारे तब कुँवर ने यह लिख भेजा । 'अब जो मेरा जी होठों[1] पर आगया और किसी डौल न रहा गया और आपने मुझे सौ सौ रूप से खोला और बहुत सा टटोला तब तो लाज छोड़ कर के हाथ जोड़ के मुँह को फाड़ के घिघिया के यह लिखता हूँ ।

दोहरा

चाह के हाथों किसी को सुख नहीं ।
है भला वह कौन जिसको दुख नहीं[2] ॥

उस दिन जो मैं हरियाली देखने को गया था । एक हिरनी मेरे सामने कनौतियाँ उठाए आगई उसके पीछे मैंने घोड़ा बग छुट फेंका । जब तक उजाला रहा उसके धुन में बहका किया जब सूरज डूबा मेरा जी ऊबा सुहानी सी अमरइयाँ ताड़ के मैं उनमें गया तो उन अमरइयों का पत्ता पत्ता मेरे जी का गाहक हुआ । वहाँ का यह सौहिला है, कुछ रंडियाँ झूला डाले झूल रही थीं । उसकी सरधरी कोई रानी केतकी महाराज जगतपरकास की बेटी हैं । उन्होंने यह अँगूठी अपनी मुझे दी और मेरी अँगूठी उन्होंने लेली और लिखौट भी लिख दी सो यह अँगूठी उनकी लिखौट समेत

---

१ पाठा० 'नाक' और 'नथनों' दोनों है ।
२ कई प्रति में इसे गद्य में लिखा है ।

मेरे लिखे हुए के साथ पहुँचती है। अब आप पढ़ लीजिए जिसमें बेटे का जी रह जाय सो कीजिए।' महाराज और महारानीं ने अपने बेटे के लिखे हुए पर सोने के पानी से यों लिखा। 'हम दोनों ने इस अँगूठी और लिखौट को अपनी आँखों से मला अब तुम इतने कुछ कुढ़ो पचो मत। जो रानी केतकी के मां बाप तुम्हारी बात मानते हैं तो हमारे समधी और समधिन हैं और दोनों राज एक हो जाएँगे और जो कुछ नाह नूह ठहरेगी तो जिस डौल से बन आवेगा ढाल तलवार के बल तुम्हारी दुल्हन हम तुमसे मिला देंगे। आज से उदास मत रहा करो खेलो कूदो बोलो चालो आनंदें करो। अच्छी घड़ी सुभ मुहूरत सोच के तुम्हारी ससुराल में किसी बाम्हन को भेजते हैं जो बात चित चाही ठीक कर लावे।' और सुभ घड़ी सुभ मुहूरत देख के रानी केतकी के मां बाप के पास भेजा।

बाम्हन जो सुभ मुहूरत देखकर हड़बड़ी से गया था उस पर बुरी घड़ी पड़ी। सुनतेही रानी केतकी के मां बाप ने कहा 'हमारे उनके नाता नहीं होने का। उनके बाप दादे हमारे बाप दादे के आगे सदा हाथ जोड़ कर बातें किया करते थे और टुक जो तेवरी चढ़ी देखते थे बहुत डरते थे। क्या हुआ जो अब वह बढ़ गए ऊँचे पर चढ़ गए। जिनके माथे हम बाँए पाँव के अँगूठे से टीका लगावें वह महाराजों का

राजा हो जावे। किसी का मुंह जो यह बात हमारे मुंह पर लावे।' बाम्हन ने जल भुन के कहा 'अगले भी बिचारे ऐसे ही कुछ हुए हैं। राजा सूरजभान भी भरी सभा में कहते थे हममें उनमें कुछ गोत का तो मेल नहीं। यह कुंवर की हठ से कुछ हमारी नहीं चलती नहीं तो ऐसी ओछी बात कब हमारे मुंह से निकलती।' यह सुनते ही उस महाराज ने बाम्हन के सिर पर फूलों की चंगोर फेंक मारी और कहा 'जो बाम्हन की हत्या का धड़का न होता तो तुझको अभी चक्की में दलवा डालता' और अपने लोगों से कहा 'इसको ले जाओ और ऊपर एक अँधेरी कोठरी में मूँद रक्खो।' जो इस बाह्मन पर बीती सो सब उदैभान के मां बाप ने सुनी। सुनते ही लड़ने को अपना ठाट बाँध भादों के दल बादल जैसे घिर आते हैं चढ़ आया। जब दोनों महाराजों में लड़ाई होने लगी रानी केतकी सावन भादों के रूप रोने लगी और दोनों के जी में यह आ गयी यह कैसी चाहत जिसमें लोहू[1] बरसने लगा और अच्छी बातों को जी तरसने लगा। कुँवर ने चुपके से यह लिख भेजा 'अब मेरा कलेजा टुकड़े टुकड़े हुआ जाता है। दोनों महाराजों को आपस में लड़ने दो किसी डौल से जो हो सके तो तुम मुझे अपने पास बुला लो हम तुम दोनों मिलके किसी और देस

१ पाठा० लहू।

निकल चलें होनी हो सो हो सिर रहता रहे, जाता जाय ।' एक मालिन जिसको फूलकली कर सब पुकारते थे उसने उस कुँवर की चिट्ठी किसी फूल की पँखड़ी में लपेट सपेट कर रानी केतकी तक पहुँचा दी । रानी ने उस चिट्ठी को अपनी आँखों लगाया और मालिन को एक थाल मोती दिये और उस चिट्ठी की पीठ पर अपने मुँह की पीक से यह लिखा 'ऐ मेरे जी के गाहक, जो तू मुझे बोटी बोटी करके चील कौवों को दे डाले तो भी मेरी आँखों चैन और कलेजे सुख हो पर यह बात भाग चलने की अच्छी नहीं । इसमें एक बाप दादे को चिट लग जाती है और जब तक मां बाप जैसा कुछ होता चला आता है, उसी डौल से बेटा बेटी को किसी पर पटक न मारें और सर से किसी के चेपक न दें तब तक यह एक जी तो क्या जो करोर जी जाते रहे, कोई बात तो हमें रुचती नहीं' ।

यह चिट्ठी जो पीक भरी[1] कुँवर तक जा पहुँची उस पर कई एक थाल सोने के हीरे मोती पुखराज के खचा खच भरे हुए निछावर करके लुटा देता है । और जितनी उसे बेचैनी थी उससे चौगुनी पचगुनी हो जाती है और उस चिट्ठी को अपने उस गोरे डंड पर बाँध लेता है ।

---

१ पाठा० विस (विष) ।

[आना जोगी महेन्दर गिर का कैलास पहाड़ पर से और कुँवर उदैभान और उसके मां बाप का हिरनी हिरन कर डालना]

जगतपरकास अपने गुरू को, जो कैलास पहाड़ पर रहता था, लिख भेजता है 'कुछ हमारी सहाय कीजिये, महा कठिन हम पर बिपतामारों आ पड़ी है। राजा सूरजभान को अब यहाँ तक वाव बँहक ने लिया है जो उन्होंने हम से महाराजों से डौल किया है।'

[सराहना जोगी जी के स्थान का]

कैलास पहाड़ जो एक डौल चांदी का है उस पर राजा जगतपरकास का गुरु, जिसको महेन्दर गिर सब इन्दरलोक के लोग कहते थे, ध्यान ज्ञान में कोई नव्वे लाख अतीतों के साथ ठाकुर के भजन में दिन रात लगा रहता था। सोना रूपा ताँबे राँगे का बनाना तो क्या और गुटका मुँह से लेकर उड़ना परे रहे उसको और बातें इस ढब की ध्यान में थीं जो कहने सुनने से बाहर हैं। मेंह सोने रूपे का बरसा दना और जिस रूप में चाहना हो जाना सब कुछ उसके आगे खेल था, गाने बजाने में महादेव जी छुट सब उसके आगे कान पकड़ते थे। सरस्वती जिसको सब लोग कहते थे उन्ने भी कुछ गुनगुनाना उसी से सीखा था। उसके सामने छ

---

१ एक प्रति में 'और बीन, अधिक है।

राग छत्तीस रागिनियाँ आठ पहर रूप बंदियों का सा घेरे हुए उसकी सेवा में सदा हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं और वहां अतीतों को गिर कह कर पुकारते थे—भैरो गिर, बिभास गिर, हिंडोल गिर, मेघनाथ, केदारनाथ, दीपक सेन, जोतीसरूप, सारङ्ग रूप और अतीतिनें इस ढब से कहलाती थीं गूजरी, टोड़ी, असावरी, गौरी, मालसिरी, विलावली। जब चाहता अधर में सिंहासन पर बैठ कर उड़ासे फिरता था और नब्बे लाख अतीत गुटके अपने मुंह में लिये गेरुवे बसतर पहने जटा बिखेरे उसके साथ होते थे। जिस घड़ी रानी केतकी के बाप की चिट्ठी एक बगला उसके घर तक पहुँचा देता है गुरु महेन्दर गिर एक चिंघाड़ मार कर दल बादलों को ढलका देता है, बघम्बर पर बैठ भभूत अपने मुँह से मल कुछ कुछ पठन्त करता हुआ बाव के घोड़े के पीठ लगा और सब अतीत मृगछालों पर बैठे हुये गुटके मुँह में लिए हुए बोल उठे "गोरख जागा और मुछन्दर भागा"। एक आँख की झपक में वहाँ आ पहुँचता है जहाँ दोनों महाराजों में लड़ाई हो रही थी। पहले तो एक काली आँधी आई फिर ओले बरसे फिर टिड्डी[1] आई। किसी को अपनी सुध न रही। राजा सूरजभान के जितने हाथी घोड़े और जितने लोग और भीड़ भाड़ थी कुछ न समझा कि क्या किधर गयी और उन्हें कौन उठा ले गया।

---

१ पाठा० बड़ी आंधी।

राजा जगतपरकास के लोगों पर और रानी केतकी के लोगों पर केवड़े के बूँदों की नन्ही नन्ही फुहार सी पड़ने लगी। जब यह सब कुछ हो चुका तो गुरु जी ने अतीतियों से कहा 'उदैभान सूरजभान लछमीबास इन तीनों को हिरनी हिरन बना के किसी बन में छोड़ दो और जो उनके साथी हों उन सभों को तोड़ फोड़ दो।' जैसा कुछ गुरु जी ने कहा झट पट वही किया। बिपत[1] का मारा कुँवर उदैभान और उसका बाप वह राजा सूरजभान और उसकी मां लछमीबास हिरनी हिरन बन गए। हरी घास कई बरस तक चरते रहे और उस भीड़ भाड़ का तो कुछ थल बेड़ा न मिला किधर गए और कहां थे। बस यहाँ की यहीं रहने दो। फिर सुनो। अब रानी केतकी के बाप महाराजा जगतपरकास की सुनिये। उनके घर का घर गुरु जी के पांव पर गिरा और सब ने सर झुका कर कहा 'महाराज यह आप ने बड़ा काम किया। हम सब को रख लिया। जो आज आप न पहुँचते तो क्या रहा था। सब ने मर मिटने की ठान ली थी। इन पापियों से कुछ न चलेगी, यह जानते थे[2]। राज पाट हमारा अब निछावर करके जिसको चाहिए दे डालिए[3]। राज हमसे नहीं थम सकता। सूरजभान

१ पाठा० प्रीत। २ यह वाक्य एक प्रति में नहीं है।

३ एक प्रति में इसके आगे है—हम सब को अतीत बनाके अपने साथ लीजिए।

के हाथ से आपने बचाया। अब कोई उनका चचा चंदरभान चढ़ आवेगा तो क्या बचना होगा। अपने आप में तो सकत नहीं फिर ऐसे राज का फिट्टे मुहँ कहाँ तक आप को सताया करें।' जोगी महेन्दर गिर ने यह सुनकर कहा 'तुम हमारे बेटा बेटी हो, अनन्दें करो, दन दनावो, सुख चैन से रहो। अब वह कौन है जो तुम्हे आँख भर कर और ढब से देख सके। यह बघम्बर और यह भभूत हमने तुमको दिया। जो कुछ ऐसी गाढ़ पड़े तो इसमें से एक रोंगटा तोड़ आग में फूँक दीजिये। वह रोंगटा फुकने न पावेगा जो बात की बात में हम आ पहुँचेगे। रहा भभूत, सो इसलिए है जो कोई इसे अंजन करे वह सबको देखै और उसे कोई न देखै जो चाहे सो करे।

[जाना गुरूजी का राजा के घर]

गुरु महेन्दर गिर के पांव पूजे और 'धन धन महाराज' कहे। उनसे तो कुछ छिपाव न था। महाराज जगतपरकास उनको मुर्छल करते हुए अपनी रानियों के पास ले गए। सोने रूपे के फूल गोद भर भर सबने निछावर की और माथे रगड़े। उन्होंने सबकी पीठें ठोंकी। रानी केतकी ने भी गुरूजी के दण्डवत की पर जी में बहुतसी गुरूजी को गालियाँ दीं। गुरूजी सात दिन सात रातें यहाँ रह कर जगतपरकास को सिंघासन पर बैठाकर अपने बघम्बर पर बैठ उसी

डौल से कैलास पर आ धमके और राजा जगतपरकास अपने अगले ढब से राज करने लगा।

[रानी केतकी का मदनबान के आगे रोना और पिछली बातों का ध्यान कर जानसे हाथ धोना]

दोहरा

(अपनी बोली की धुन में)

रानी को बहुत सी बेकली थी।
कब सूझती कुछ बुरी भली थी॥
चुपके चुपके कराहती थी।
जीना अपना न चाहती थी॥
कहती थी कभी अरी मदनबान।
है आठ पहर मुझे वही ध्यान॥
यां प्यास किसे किसे भला भूख।
देखूँ वही फिर हरे हरे रूख॥
टपके का डर है अब यह कहिए।
चाहत का घर है अब यह कहिये॥
अमरइयों में उनका वह उतरना।
और रात का साँय साँय करना॥
और चुपके से उठ कर मेरा जाना।
और तेरा वह चाह का जताना॥

उनकी वह उतार अँगूठी लेनी ।
और अपनी अँगूठी उनको देनी ॥

आँखों में मेरे वह फिर रही है ।
जी का जो रूप था वही है ॥

क्यों कर उनको भूलूं क्या करूं मैं ।
मां बाप से कब तक डरूँ मैं ॥

अब मैंने सुना है ऐ मदनबान ।
बन बन हिरन हुए उदयभान ॥

चरते होंगे हरी हरी दूब ।
कुछ तू भी पसीज सोच में डूब ॥

मैं अपनी गई हूँ चौकड़ी भूल ।
मत मुझको सुँघा यह डहडहे फूल ॥

फूलों को उठा के यहाँ से ले जा ।
सौ टुकड़े हुआ मेरा कलेजा ॥

बिखरे जी को न कर इकट्ठा ।
एक घास का लाके रखदे गट्ठा ॥

हरियाली उसी की देख लूँ मैं ।
कुछ और तो तुझको क्या कहूँ मैं ॥

इन आँखों में है फड़क हिरन की ।
पलकें हुई जैसे घास बन की ॥

जब देखिए डबडबा रही हैं।
ओसें आँसू की छा रही हैं॥
यह बात जो जी में गड़ गई है।
एक ओस सी मुझपै पड़ गई है॥

इसी डौल जब अकेली होती तो मदनबान के साथ ऐसे कुछ मोती पिरोती।

[रानी केतकी का चाहत से बेकल होना और मदनबान का साथ देने से नाहीं करना और लेना उस भभूत का जो गुरुजी दे गए थे आँख मिचौवल के बहाने अपनी माँ रानी कामलता से]

एक दिन रानी केतकी ने अपनी मां रानी कामलता को भुलावे में डाल कर यों कहा और पूछा–'गुरूजी गुसाईं महेन्दर गिरने जो भभूत मेरे बाप को दिया है, वह कहां रखा है और उससे क्या होता है ?' रानी कमलता बोल उठी "तेरी वारी ! तू क्यों पूछती है ?' रानी केतकी कहने लगी "आँखे मिचौवल खेलने के लिए चाहती हूँ, जब अपनी सहेलियों के साथ खेलूं और चोर बनूँ तो मुझको कोई पकड़ न सके'। महारानी ने कहा 'वह खेलने के लिए नहीं है। ऐसे लटके किसी बुरे दिन के सम्भालने को डाल रखते हैं क्या जाने कोई घड़ी कैसी है कैसी नहीं।" रानी केतकी अपनी

मां की इस बात पर अपना मुंह थुथा कर उठ गई और दिन भर खाना न खाया। महाराज ने जो बुलाया तो कहा मुझे रुच नहीं। तब रानी कामलता बोल उठी 'अजी तुमने सुना भी, बेटी तुम्हारी आँख मिचौवल खेलने के लिए वह भभूत गुरुजी का दिया माँगती थी। मैंने न दिया और कहा लड़की यह लड़कपन की बातें अच्छी नहीं किसी बुरे दिन के लिए गुरुजी दे गए है इसी पर मुझसे रूठी है बहुतेरा बहलाती हूँ मानती नहीं।' महाराज ने कहा 'भभूत तो क्या मुझे तो अपना जी भी उससे प्यारा नहीं, उसके एक पहर के बहल जाने पर एक जी तो क्या जो करोर जी हों तो दे डालें।'' रानी केतकी को डिबिया में से थोड़ा सा भभूत दिया। कई दिन तलक आँख मिचौवल अपनी मां बाप के सामने सहेलियों के साथ खेलती सबको हँसाती रही जो सौ सौ थाल मोतियों के निछावर हुआ किए। क्या कहूँ! एक चुहल थी जो कहिये तो करोड़ो पोथियों में ज्यों की त्यों न आ सके।

[रानी केतकी का चाहत से बेकल होना और मदनबान का साथ देने से नहीं करना]

एक रात रानी केतकी उसी ध्यान में मदनबान से यों बोल उठी 'अब मैं निगोड़ी लाज से कुट करती हूँ तू मेरा साथ दे'। मदनबान ने कहा 'क्योंकर'। रानी केतकी ने वह भभूत का लेना उसे बताया और यह सुनाया 'यह सब

आँख मिचौवल के झाईं झप्पे मैंने इसी दिन के लिए कर रक्खे थे।' मदनबान बोली 'मेरा कलेजा थरथराने लगा। अरी यह माना कि तुम अपनी आँखों में उस भभूत का अंजन कर लोगी और मेरे भी लगा दोगी तो हमें तुम्हें कोई न देखेगा और हम तुम सब को देखेंगी पर ऐसी हम कहां जी चली हैं जो बिन साथ जोबन लिए बन बन में पड़ी भटका करें और हिरनों की सींगों पर दोनों हाथ डाल कर लटका करें और जिसके लिए यह सब कुछ है सो वह कहां और होय तो क्या जाने यह रानी केतकी है और यह मदनबान निगोड़ी नोची खसोटी उजड़ी उनकी सहेली है। चूल्हे और भाड़ में जाय यह चाहत जिसके लिए आपको मां बाप का राज पाट सुख नींद लाज छोड़ कर नदियों के कछारों में फिरना पड़े सो भी बेडौल जो वह अपने रूप में होते तो भला थोड़ा बहुत आसरा था। ना जी यह तो हमसे न हो सकेगा जो महाराज जगतपरकास और महारानी कामलता का हम जान बूझकर घर उजाड़ें और उनकी जो इकलौती लाडली बेटी है उसको भगा ले जावें और जहाँ तहाँ उसे भटकावें और बनास पत्ती खिलावें और अपने चोंड़े को हिलावें। जब तुम्हारे और उसके मां बाप में लड़ाई हो रही थी और उन्ने उस मालिन के हाथ तुम्हें लिख भेजा था जो मुझे अपने पास बुलालो, महाराजों को आपस में लड़ने दो

जो होनी हो सो हो हम तुम मिल के किसी देस को निकल चलें। उस दिन न समझीं तब तो वह ताव भाव दिखाया अब जो वह कुँवर उदैभान और उसके मां बाप तीनों जी हिरनी हिरन बन गए। क्या जाने किधर होंगे। उनके ध्यान पर इतनी कर बैठिए जो किसी ने तुम्हारे घराने में न की अच्छी नहीं। इस बात पर पानी डाल दो नहीं तो पछतावोगी और अपना किया पावोगी। मुझसे कुछ न हो सकेगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती तो मेरे मुँह से जीते जी न निकलती पर यह बात मेरे पेट नहीं पच सकती। तुम अभी अल्हड़ हो तुमने अभी कुछ देखा नहीं जो ऐसी बात पर सचमुच ढलाव देखूँगी तो तुम्हारे बाप से कहकर वह भभूत जो वह मुवा निगोड़ा भूत मुछन्दर का पूत अवधूत दे गया है, हाथ मुरकवा कर छिनवा लूँगी'। रानी केतकी ने यह रूखाइयाँ मदनबान की सुनकर हँस कर टाल दिया और कहा 'जिसका जी हाथ में नहो उसे ऐसी लाखों सूझती हैं पर कहने और करने में बहुत सा फेर है। भला यह कोई अंधेर है जो मैं मां बाप राज पाट लाज छोड़कर हिरन के पीछे दौड़ती करछालें मारती फिरूँ पर अरी तूतो बडी बावली चिड़िया है जो यह बात सच जानी और मुझसे लड़ने लगी।'

[रानी केतकीभभूत लगाकर बाहर निकल जाना और सब छोटे बड़ों का तिलमिलाना]

दस पन्द्रह दिन पीछे एक दिन रानी केतकी बिन कहे मदनबान के वह भभूत आँखों में लगा के घर से बाहर निकल गई। कुछ कहने में आता नहीं जो मां बाप पर हुई। सब ने यह बात ठहराई, गुरु जी ने कुछ समझकर रानी केतकी को अपने पास बुला लिया होगा। महाराज जगत परकास और महारानी कामलता राज पाट उस वियोग में छोड़ छाड़ के एक पहाड़ की चोटी पर जा बैठे और किसी को अपने लोगों में से राज थामने को छोड़ गए। बहुत दिनों पर पीछे एक दिन महारानी ने महाराज जगतपरकास से कहा 'रानी केतकी का कुछ भेद जानतीं होगी तो मदनबान जानती होगी। उसे बुलाकर पूछा तो'[1]। महाराज ने उसे बुला कर पूछा तो मदनबान ने सब बात खोलियाँ। रानी केतकी के माँ बाप ने कहा 'अरी मदनबान जो तू भी उसके साथ होती तो हमारा जी भरता—अब जो वह तुझे ले जावे तो कुछ हचर पचर न कीजियो। उसके साथ हो लीजियो। जितना भभूत है तू अपने पास रख। हम कहाँ इस राख को चूल्हे में डालेंगे। गुरु जी ने तो दोनों राज्य का खोज खोया। कुँवर उदैभान और उसके मां बाप दोनों अलग हो रहे। जगतपरकास और कामलता को यों तलपट किया। भभूत न होती तो ये बातें काहे को सामने आतीं'।

---

१ एक प्रति में 'बहुत दिनों पीछे··· बुलाकर पूछो तो' नहीं है।

मदनबान भी उनके ढूँढ़ने को निकली। अंजन लगाए हुए 'रानी केतकी रानी केतकी' कहती हुई पड़ी फिरती थी। बहुत दिनों पीछे कहीं रानी केतकी भी हिरनों की दहाड़ों में 'उदैभान उदैभान' चिंघाड़ती हुई आ निकली। एक ने एक को ताड़ कर पुकारा 'अपनी तनी आँखे धो डालो'। एक डबरे पर बैठ कर दोनों की मुठभेड़ हुई। गले लग के ऐसी रोइयाँ जो पहाड़ों में कूक सी पड़ गई।

दोहरा

छा गई ठंडी साँस झाड़ों में।
पड़ गई कूक सी पहाड़ों में ॥

दोनों जनियाँ ऐक अच्छी सी छाँव को ताड़ कर आ बैठियाँ और अपनी अपनी दोहराने लगीं।

[बातचीत रानी केतकी की मदनबान के साथ]

रानी केतकी ने अपनी बीती सब कही और मदनबान वही अगला झींकना झींका की और उनके मां बापने जो उनके लिए जोग साधा था जो वियोग लिया था सब कहा। जब यह सब कुछ हो चुकी तब फिर हँसने लगी। रानी केतकी उसके हँसने पर रुक कर कहने लगी।

---

१ एक प्रति में 'एक टीले पर' अधिक है।

दोहरा

हम नहीं हँसने से रुकते जिसका जी चाहे हँसे ।
[है] है वही अपनी कहावत आफँसे जी आफँसे ॥
अब तो सारा अपने पीछे झगड़ा झाँटा लग गया ।
पाँव का क्या ढूँढती हो जी में काँटा लग गया ॥

पर मदनबान से कुछ रानी केतकी के आँसू पुछते चले। उन्ने यह बात कही 'जो तुम कहीं ठहरो तो मैं तुम्हारे उन उजड़े हुए मां बाप को चुपचाप ले आऊँ और उन्हीं से इस नात को ठहराऊँ । गोसाईं महेन्दर गिर जिसकी यह सब करतूत है वह भी इन्हीं दोनों उजड़े हुए की मुट्ठी में है। अब भी जो मेरा कहा तुन्हारे ध्यान चढ़े तो गए हुए दिन फिर सकते हैं । पर तुम्हारे कुछ भावे नहीं हम क्या पड़ी बकती हैं। मैं इस पर बीड़ा उठाती हूँ'। बहुत दिनों पीछे रानी केतकी ने इस पर अच्छा कहा और मदनबान को अपने मां बाप के पास भेजा और चिट्ठी अपने हाथों से लिख भेजी जो आप से हो सके तो उस जोगी से ठहरा के आवें।

[मदनबान का महाराज और महारानी के पास फिर आना और चित चाही बात सुनाना]

मदनबान रानी केतकी को अकेली छोड़कर राजा जगतपरकास और रानी कामलता जिस पहाड़ पर बैठी थीं झट से आदेस करके आ खड़ी हुई और कहने

लगी 'लीजे आप राज कीजे आप का घर नए सिर से बसा और अच्छे दिन आए। रानी केतकी का एक बाल भी बाँका नहीं हुआ। उन्हीं के हाथों की लिखी चिट्ठी लाई हूँ, आप पढ़ लीजिए। आगे जो जी चाहे सो कीजिए'। महाराज ने उस बघम्बर में से एक रोंगटा तोड़कर आग पर रख के फूँक दिया। बात की बात में गोसाईं महेन्द्रगिर आ पहुँचा और जो कुछ नया सवाँग जोगी जोगिन का आया आँखों देखा। सबको छाती लगाया और कहा 'बघम्बर तो इसीलिए मैं सौंप गया था कि जो तुम पर कुछ हो तो इसका एक बाल फूँक दीजियो। तुम्हारी यह गत हो गयी। अब तक क्या कर रहे थे और किन नींदों में सोते थे। पर तुम क्या करो? यह खिलाड़ी जो रूप चाहै सो दिखावै, जो नाच चाहे नचावै। भभूत लड़की को क्या देना था। हिरनी हिरन उदैभान और सूरजभान उसके बाप और लछमीवास उसकी माँ का मैंने किया था। फिर उन तीनों को जैसा का तैसा करना कोई बड़ी बात न थी। अच्छा, हुई सो हुई। अब उठ चलो, अपने राज पर बिराजो और ब्याह की ठाठ करो। अब तुम अपनी बेटी को समेटो। कुँवर उदैभान को मैंने अपना बेटा किया और उसको लेके मैं ब्याहने चढूंगा'। महाराज यह सुनते ही अपनी गद्दी पर आ बैठे और उसी घड़ी यह कह दिया 'सारी छतों और कोठों को गोंटे से मढ़ो और सोने और रूपे

के सुनहरे रुपहरे सेहरे सब झाड़ पहाड़ों पर बाँध दो और पेड़ों में मोती की लड़ियाँ बाँध दो और कह दो-चालीस दिन चालीस रात तक जिस घर में नाच आठ पहर न रहेगा उस घरवाले से मैं रूठ रहूँगा और यह जानूँगा यह मेरे दुख सुख का साथी नहीं। और छ महीने कोई चलने वाला कहीं न ठहरे रात दिन चला जावे'। इस हेर फेर में वह राज था। सब कहीं यही डौल था।

[जाना महाराज महारानी और गुसाईं महेन्दर गिर का रानी केतकी के लिए]

फिर महाराज और महारानी और महेन्दर गिर मदन-बान के साथ जहाँ रानी केतकी चुपचाप सुन खींचे हुए बैठी थी चुपचुपाते वहाँ आन पहुँचे। गुरु जी रानी केतकी को अपने गोद में लेकर कुँवर उदैभान का चढ़ावा चढ़ा दिया और कहा 'तुम अपने मां बाप के साथ अपने घर सिधारो अब मैं बेटे उदैभान को लिए हुए आता हूँ'। गुरु जी गोसाईं जिनको दण्डौत है सो तो वह सिधारते हैं। आगे जो होगी सो कहने में आवेगी। यहाँ पर धूम धाम फैलावा अब ध्यान कीजिए। महाराज जगतपरकास ने अपने सारे देस में कह दिया 'यह पुकार दे जो यह न करेगा उसकी बुरी गत होवेगी। गाँव गाँव में अपने सामने छिपोले बना बना के सूहे कपड़े उन पर लगा के गोट धनुष की और गोखरू रुपहले

सुनहरे की किरनें और डाँक टाँक टाँक रक्खो और जितने बड़, पीपल नए पुराने जहाँ जहाँ पर हों उन के फूल के सेहरे बड़े बड़े ऐसे जिसमें सिरेसे लगा पैर तलक पहुँचे, बाँधो।

चौतुक्का

पौदों ने रँगा के सूहे जोड़े पहने।
सब पाँव में डालियों ने तोड़े पहने॥
बूटे बूटे ने फूल फूल के गहने पहने।
जो बहुत न थे तो थोड़े थोड़े पहने॥

जितने डहडहे और हरियावल फूल पात थे, सबने अपने हाथ में चहचही मेंहदी की रचावट की सजावट के साथ जितनी समावट में समा सके, कर लिए और जहाँ जहाँ नवल ब्याही दूल्हनें नन्हीं नन्हीं फलियों की और सुहागिनें नई नई कलियों के जोड़े पँखुड़ियों के पहने हुई थीं। सबने अपनी अपनी गोद सुहाग और प्यार के फूल और फलों से भरी और तीन बरस का पैसा सारे उस राजा के राजभर में जो लोग दिया करते थे, उस ढब से हो सकता था खेती बारी करके हल जोत के और कपड़ा लत्ता बेंचकर सो सब उनको छोड़ दिया और कहा जो अपने अपने घरों में बनाव की ठाट करें। और जितने राजभर में कूँएँ थे खँडसालों की खँडसालें उनमें उड़ेल गईं और सोर बनों और पहाड़ तलियों

में लाल पटों[1] की झमझमाहट रातों को दिखाई देने लगीं। और जितनी झीलें थीं उनमें कुसुम और टेसू और हरसिंगार पड़ गया और केसर भी थोड़ी थोड़ी घोले में आगई। फुनगे से लगा जड़ तलक जितने झाड़ झङ्खाड़ों में पत्ते और पत्ती बँधी थी उन पर रुपहरी सुनहरी डाँक गोंद लगाकर चिपका दिए और सभों को कह दिया जो सूही पगड़ी और सूहे बागे बिन कोई किसी डौल किसी रूप से फिरे चले नहीं और जितने गवैये बजवैये भाँड़ भगतिए रहसधारी और सङ्गीत पर नाचनेवाले थे सबको कह दिया जिस जिस गाँव में जहाँ हों अपने अपने ठिकानों से निकल कर अच्छे अच्छे बिछौने बिछाकर गाते नाचते कूदते रहा करें।

[ढूँढना गोसाईं महेन्दर गिर का कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप को, न पाना और बहुत तलमलाना]

यहाँ की बात और चुहलें जो कुछ है सो यहीं रहने दो अब आगे सुनो। जोगी महेन्दर और उसके नब्बे लाख अतीतों ने सारे बन के बन छान मारे पर कहीं कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप का ठिकाना न लगा तब उन्होंने राजा इन्दर को चिट्ठी लिख भेजी। उसे चिट्ठी में यह लिखा हुआ

---

१ पाठा० लालटेन।

था—'इन तीनों जनों को हिरनी हिरन कर डाला था, अब उनको ढूँढता फिरता हूँ कहीं नहीं मिलते और मेरी जितनी सकत थी अपनी सी बहुत कर चुका हूँ। अब मेरा मुँह से से निकला कुँवर उदैभान मेरा बेटा मैं उसका बाप और ससुराल में सब ब्याह का ठाट हो रहा है। अब मुझ पर बिपत्ती गाढ़ी पड़ी जो तुमसे हो सके, करो।' राजा इन्दर चिट्ठी के देखते ही गुरू महेन्दर के देखने को सब इन्द्रासन समेट कर आ पहुँचे और कहा 'जैसा आप का बेटा वैसा मेरा बेटा। आप के साथ मैं सारे इन्द्रलोक को समेट कर कुँवर उदैभान को ब्याहने चढ़ूंगा।' गोसाईं महेन्दर गिर ने राजा इन्दर से कहा 'हमारी आपकी एक ही बात है पर कुछ ऐसा सुझाइये जिससे कुँवर उदैभान हाथ आ जावे।' राजा इंदर ने कहा 'जितने गवैए और गायने हैं, उन सबको साथ लेकर हम और आप सारे बनों में फिरा करें कहीं न कहीं ठिकाना लग जायगा।' गुरु ने कहा 'अच्छा।'

[हिरन हिरनी का खेल बिगड़ना और कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप का नये सिरे से रूप पकड़ना]

एक रात राजा इन्दर और गोसाईं महेन्दर गिर निखरी हुई चांदनी में बैठे राग सुन रहे थे करोड़ों हिरन राग के ध्यान में चौकड़ी भूल आस पास सर झुकाए खड़े थे।

इसी में राजा इन्दर ने कहा 'इन सब हिरनों पर पढ़के-मेरी सकत गुरूकी भगत फुरे मंत्र ईस्वरोवाचा-पढ़ के एक एक छींटा पानी का दो।' क्या जाने वह पानी कैसा था छीटों के साथ ही कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप तीनों जने हिरनों का रूप छोड़ कर जैसे थे वैसे हो गए। गोसाईं महेन्दर गिर और राजा इन्दर ने उन तीनों को गले लगाया और बड़ी आव भगत से अपने पास बैठाया और वही पानी घड़ा अपने लोगों को देकर वहाँ भेजवाया जहाँ सर मुँड़वाते ही ओले पड़े थे। राजा इन्दर के लोगों ने जो पानी के छींटे वही ईश्वरो वाच पढ़ के दिए तो जो मरे थे सब उठ खड़े हुए और जो जो अधमुए भाग बचे थे, सब सिमट आए। राजा इन्दर और महेन्दर गिर कुँवर उदैभान और राजा सूरजभान और रानी लछमीबास को लेकर एक उड़न-खटोले पर बैठकर बड़ी धूम धाम से उनको उनके राज पर बिठाकर ब्याह के ठाट करने लगे। पसेरियन हीरे मोती उन सब पर से निछावर हुए। राजा सूरजभान और कुँवर उदैभान और रानी लछमीबास चितचाही असीस पाकर फूली न समाईं और अपने सारेराज को कह दिया "जेंवर भौंरे के मुँह खोल दो। जिस जिस को जो जो उकत सूझे बोलदो। आज के दिन का सा कौन सा होगा। हमारी आँखो की पुतलियों का जिससे चैन है उस लाडले इकलौते का ब्याह और हम तीनों का हिरनों के रूप

से निकल फिर राज पर बैठना । पहिले तो यह चाहिए, जिन जिन की बेटियाँ बिन ब्याहियाँ हो उन सब को उतना करदो जो अपने जिस चाव चोज से चाहे अपनी गुड़ियाँ सँवार के उठावें और जब तक जीती रहें सब की सब हमारे यहाँ से खाया पकाया रींधा करैं । और सब राज भर की बेटियाँ सदा सुहागिनें बनी रहें और सूहे राते छुट कभी कोई कुछ न पहना करैं । और सोने रूपे के केवाड़ गङ्गा जमुनी सब घरों में लग जाएँ और सब कोठों के माथों पर केसर और चंदन के टीके लगे हों । और जितने पहाड़ हमारे देस में हों उतने ही पहाड़ सोने रूपेके सामने खड़े हो जायँ और डाँगों की चोटियाँ मोतियों की माँग से बिन माँगे ताँगे भर जायँ और फूलों के गहने और बंधनवार से सब झाड़ फहाड़ लदे फँदे रहें और इस राज से लगा उस राज तक अधर में छत सी बाँध दो और चप्पा चप्पा कहीं ऐसा न रहे जहाँ भीड़ भड़क्का धूम धड़क्का न हो जाय । फूल बहुत सारे खंड जाय जो नदियाँ जैसे सचमुच फूल की बहातियाँ हैं यह समझा जाय । और यह डौल कर दो जिधर से दूल्हा को ब्याहने चढ़ें सब लाडली और हीरे और पुखराज की उमड़ में इधर और उधर कँवल की टट्टियाँ बन जायँ और क्यारियाँ सी हो जायँ जिनके बीचोबीच से हो निकलें और कोई डाँग और

१ पाठा० घड़े ।

पहाड़ तली का चढ़ाव उतार ऐसा दिखाई न दे जिसकी गोद पँखुरियों से भरी हुई न हों।

[राजा इंदर का कुँवर उदैभान का साथ करना]

राजा इन्दर ने कह दिया, 'वह रंडियाँ चुलबुलियाँ जो अपने मद में उड़ चलियाँ हैं उनसे कह दो—सोलह सिंगार बाल गजमोती पिरो अपने अपने अचरज और अचम्भे के उड़न खटोलों की इस राज से लेकर उस राज तक अधर में छत सी बाँध दो। कुछ उस रूप से उड़ चलो जो उड़न खटोलियों की क्यारियाँ और फुलवारियाँ सैकड़ों कोस तक हो जायँ और अधर ही अधर मिरदंग बीन जलतरंग मुँहचंग घुंघुरू तबले घंटताल और सैकड़ों इस ढब के अनोखे बाजे बजते आएँ और उन क्यारियों के बीच में हीरे पुखराज अनबेध मोतियों के झाड़ और लालपटों की भीड़भाड़ की झमझमाहट दिखाई दे और इन्हीं लालपटों में से हथफूल फूलझड़ियाँ जाही जुही कदम गेंदा चमेली इस ढब से छूटने लगें जो देखने वालों की छातियों के केवाड़ खुल जाएँ और पटाखे जो उछल उछल फूटें उनमें से हँसती सुपारी और बोलती करौती ढल पड़े और जब हम सबको हँसी आवे तो चाहिए उस हँसी से मोतियों की लड़ियाँ झड़ें जो सब के सब उनको चुन चुन के राजे हो जायँ। डोमनियों के रूप में सारंगियाँ छेड़ छेड़ सोहलें गावो, दोनों हाथ हिला के

अँगुलियाँ नचावो, जो किसी ने सुनी हो। वह ताव भाव व चाव देखावो, ठुड्डियाँ गिनगिनावो, नाक भँवे तान तान भाव बतावो, कोई छुट कर रह न जावो। ऐसा चाव लाखों बरस में होता है'। जो जो राजा इन्दर ने अपने मुँह से निकाला था आँख की झपक के साथ वही होने लगा। और जो कुछ उन दोनों महाराजों ने कह दिया था, सब कुछ उसी रूप से ठीक ठीक हो गया। जिस ब्याह की यह कुछ फैलावट और जमावट और रचावट ऊपर तले इस जमघटे के साथ होगी, और कुछ फैलावा क्या कुछ होगा, यही ध्यान कर लो।

[ठाट करना गोसाईं महेन्दरगिर का]

जब कुँवर उदैभान को वे इस रूप से ब्याहने चढ़े और वह बाम्हन जो अँधेरी कोठरी में मुँदा हुआ था उसको भी साथ ले लिया और बहुत से हाथ जोड़े और कहा 'बाम्हन देवता हमारे कहने सुनने पर न जावो, तुम्हारी जो रीत चली हुई आई है बताते चलो'। एक उड़न-खटोले पर वह भी रीत बताके साथ हो लिया। राजा इन्दर और महेन्दरगिर ऐरावत हाथी पर झूलते झालते देखते भालते चले जाते थे। राजा सूरजभान दूल्हा के घोड़े के साथ माला जपता हुआ पैदल था। इसीमें एक सन्नाटा हुआ। सब घबरा गए। उस सन्नाटे में जो वह ९० लाख अतीत थे सब जोगी से बने हुए सब माले मोतियों की लड़ियों के गले में डाले हुए और

गातियाँ उसी ढब की बाँधे हुए मिरिगछालों और बघंबरों पर आ ठहर गए। लोगों के जियों में जितनी उमंग छा रही थीं वह चौगुनी पचगुनी हो गई। सुखपाल और चंडोल और रथों पर जितनी रानियाँ थीं महारानी लछमीबास के पीछे चली आतियाँ थीं। सब को गुदगुदियाँ सी होने लगीं। इसी में भरथरी का सवाँग आया। कही जोगी जतियाँ आ खड़े हुए। कहीं कहीं गोरख जागे कहीं मुछन्दर नाथ भगे। कहीं मच्छ कच्छ बराह सन्मुख हुए। कही परसुराम, कहीं बामन रूप, कहीं हरनाकुस और नरसिंह, कहीं राम लछमन सीता समेत आई, कहीं रावन और लङ्का का बखेड़ा सारे का सारा सामने देखाई देने लगा।[1] कहीं कैन्हया जी की जनमअस्टमी होना और बसुदेव का गोकुल ले जाना और उनका बढ़ चलना, गाएँ चरानी और मुरली बजानी और गोपियों से धूम मचानी और राधिका-रहस और कुब्जा का बस कर लेना, कहीं करील की कुंजें, बंसीबट, चीर घाट, बृन्दावन, सेवा कुंज, बरसाने में रहना और कन्हैया से जो जो हुआ था सब का सब ज्यों का त्यों आँखों में आना और द्वारिका जाना और वहां सोने का घर बनाना इधर बिरिज को न आना और सोलह सौ गोपियों का तलमलाना सामने आगया। उनमें से ऊधो

१ एक प्रति में 'कहीं महादेव और पारवती दिखाई पड़े' अधिक है।

का हाथ पकड़ कर एक गोपी के इस कहने ने सबको रुला दिया जो इस ढब से बोल के उनसे रुँधे हुए जी को खोले थी—

चौतुक्का

जब छाँड़ि करील की कुंजन कों हरि द्वारिका जीउ मां जाय बसे।
कुलधूत के धाम बनाय घने महराजन के महराज भए ॥
तज मोर मुकुट अरु कामरिया कछु औरहि नाते जोड़ लिए।
धरे रूप नए किये नेह नए अरु गइयाँ चरायबो भूल गए ॥

[अच्छापना घाटों का]

कोई क्या कह सके, जितने घाट दोनों राज की नदियों में थे, पक्के चाँदी के थक्के से हो कर लोगों को हक्का बक्का कर रहे थे। निवाड़े, भौलिए, बजरे, लचके, मोर पंखी, स्याम सुंदर, रामसुंदर और जितनी ढब की नावें थी सोनहरी रूपहरी, सजी सजाई कसी कसाई सौ सौ लचके खातियाँ आतियाँ जातियाँ ठहरातियाँ फिरतियाँ थी। उन सभी पर खचाखच कंचनियाँ, राम-जनियां, डोमनियाँ भरी हुई अपने अपने करतबों में नाचती गाती बजाती कूदती फाँदती धूमें मचातियाँ अँगड़ातियाँ जँभातियाँ उँगुलियाँ नचातियाँ और ढुली पड़तियाँ थीं। और कोई नाव ऐसी न थी जो सोने रूपे के पत्तरों से मढ़ी हुई और सवारी से डटी हुई न हो। और बहुत सी नावों पर हिंडोले भी उसी ढब के थे। उनपर

गायनें बैठी झूलती हुई सोहनी, केदारा, बागेसरी, कान्हड़ों में गा रही थीं। दल बादल ऐसे नेवाड़ों के सब झीलों में छा रहे थे।

[आ पहुँचना कुँवर उदैभान का ब्याह के ठाठ के साथ दूल्हन की ड्योढ़ी पर]

इस धूमधाम के साथ कुँवर उदैभान सेहरा बाँध जब दूल्हन के घर तक आ पहुँचा और जो रीतें उनके घराने में चली आई थीं होने लगियाँ। मदनबान रानी केतकी से ठठोली करके बोली 'लीजिए अब सुख समेटिए भर भर झोली सिर निहुराये क्या बैठी हो, आवो न टुक हम तुम झरोखों से उन्हें झाँकें'। रानी केतकी ने कहा 'न री, ऐसी नीच बातें न कर। हमें क्या पड़ी जो इस घड़ी ऐसी झेल कर रेलपेल ऐसी उठें और तेल फुलेल भरी हुई उनके झाँकने को जा खड़ी हो'। मदनबान उनकी इस रुखाई को उड़नझाईं की बातों में डाल कर बोली।

[बोलचाल मदनबान की अपनी बोली के दोहों में]

यों तो देखा बा छड़ जी वा छड़ जी वा छड़।
हम से जो आने लगी हैं आप यों मुहरे कड़॥
छान मारे बन के बन थे आप ने जिन के लिए।
वह हिरन जोबन के मद में हैं बने दूल्हा खड़े॥

तुम न जावो देखने को जो उन्हें क्या बात है ।
ले चलेंगे आप को हम हैं इसी धुन पर अड़े ॥
है कहावत जी को भावै और यो मुँड़ियाँ हिलें ।
झाँकने के ध्यान में उनके हैं सब छोटे बड़े ॥
साँस ठंढी भरके रानी केतकी बोली कि सच ।
सब तो अच्छा कुछ हुआ पर अब बखेड़े में पड़े ॥

[वारी फेरी होना मदनबान का रानी केतकी पर और उसकी बास का सूँघना और उनींदे पन से ऊँघना]

उस घड़ी मदनबान को रानी केतकी के बादले का जूड़ा[1] और भीनाभीनापन और अँखंडियों का लजाना आर बिखरा बिखरा जाना भला लग गया तो रानी केतकी की बास सूँघने लगी और अपनी आँखों को ऐसा कर लिया जैसे कोई ऊँघने लगता है । सिर से लगी पाँव तक वारी फेरी होके तलवे सुहलाने लगी । तब रानी केतकी झट एक धीमी सी सिसकी लचके के साथ ले उठी । मदनबान बोली "मेरे हाथ के ठोंके से वही पाँव का छाला दुख गया होगा जो हिरनों को ढूँढने में पड़ गया था ।' इसी दुख की चुटकी से

१ पाठा० 'मांजे या बानजे का जोड़' ।

रानी केतकी ने मसोस कर कहा 'काँटा अड़ा तो अड़ा, छाला पड़ा तो पड़ा, पर निगोड़ी तू क्यों मेरी पनछाला हुई' ।

[सराहना रानी केतकी के जोबन का]

केतकी का भला लगना लिखने पढ़ने से बाहर है । वह दोनों भँवों की खिंचावट और पुतलियों में लाज की समावट और नोकीले पलकों की रुँधावट हँसी का लगावट और दन्तड़ियों में मिस्सी की उदाहट और इतनी सी बात पर रुकावट है । नाक और त्योरी का चढ़ा लेना, सहेलियों को गालियाँ देना और चल निकलना और हिरनों के रूप से करछालें मारकर परे उछलना कुछ कहने में नहीं आता ।

[सराहना कुँवर जी के जोबन का]

कुँवर उदैभान के अच्छेपन का कुछ हाल लिखना किससे हो सके । हायरे उनके उभार के दिनों का सुहानापन, चाल ढाल का अच्छन बच्छन, उठती हुई कोंपल की काली का फबन और मुखड़े का गदराया हुआ जोबन जैसे बड़े तड़के धुँधले के हरे भरे पहाड़ों की गोद से सूरज की किरनें निकल आती हैं । यही रूप था । उनके भीगे मसों में से रस टपका पड़ता था । अपनी परछाईं देखकर अकड़ता । जहाँ जहाँ छाँव थी, उसका डौल ठीक ठीक उनके पाँव तले, जैसे धूप थी ।

[दूल्हा का सिंघासन पर बैठना]

दूल्हा उदैभान सिंघासन पर बैठा और इधर उधर राजा इन्दर और जोगी महेन्दर गिर जम गए और दूल्हा का बाप अपने बेटे के पीछे माला लिए कुछ गुनगुनाने लगा। और नाच लगा होने और अधर में जो उड़नखटोले राजा इन्दर के अखाड़े के थे सब उसी रूप से छत बाँधे हुए थिरका किए। दोनों महारानियाँ समधिन बन के आपस में मिलियाँ चलियाँ और देखने दाखने को कोठों पर चंदन के किवाड़ों के आड़ तले आ बैठियाँ। सवाँग संगीत भँड़ताल रहस हँसी होने लगीं। जितनी राग रागिनियाँ थी–ईमन कल्यान, सुद्ध कल्यान, झिंझोटी, कान्हडा, खम्माच, सोहनी, परज, बिहाग, सोरठ, कालंगड़ा, भैरवी, षट ललित भैरों रूप पकड़े हुए सचमुच के जैसे गानेवाले होते हैं उसी रूप में अपने अपने समय पर गाने लगे और गाने लगियाँ। उस नाच का जो ताव भाव रचावट के साथ हो, किसका मुँह जो कह सके। जितने महाराजा जगत परकास के सुख चैन के घर थे–माधो बिलास, रसधाम, कृष्णनिवास, मच्छीभवन, चन्द्रभवन–सबके सब लप्प से लपेटे और सच्चे मोतियों की झालरें अपने अपने गाँठ में समेटे हुए एक भेष के साथ मतवालों के मुँह चूम रहे थे।

बीचों बीच उन सब घरों के एक आरसी-धाम बना था

जिसकी छत और किवाड़ और आँगन में आरसी छुट कहीं लकड़ी ईंट पत्थर की पुट एक उँगुली के पोर बराबर न लगी थी। चाँदनी का जोड़ा पहने जब रात घड़ी एक रह गई थी तब रानी केतकी सी दूल्हन को उसी आरसीभवन में बैठाकर दूल्हा को बुला भेजा। कुँवर उदैभान कन्हैया सा बना हुआ सिर पर मुकुट धरे सेहरा बाँधे उसी तड़ावे और जमघट के साथ चाँद सा मुखड़ा लिए जा पहुँचा। जिस जिस ढब से बाम्हन और पंडित कहते गए और जो जो महाराजों में रीतें होती चली आई थीं उसी डौल से उसी रूपसे भँवरी गठ जोड़ा हो लिया।

दोहा।

अब उदैभान और रानी केतकी दोनों मिले।
आस के जो फूल कुम्हलाए हुए थे फिर खिले॥
चैन होता ही न था जिस एक को उस एक बिन।
रहने सहने सो लगे आपस में अपने रात दिन॥
ऐ खिलाड़ी यह बहुत सा कुछ नहीं थोड़ा हुआ।
आनकर आपस में जो दोनों का गठजोड़ा हुआ॥
चाह के डूबे हुए ऐ मेरे दाता सब तिरैं।
दिन फिरे जैसे इन्हों के वैसे दिन अपने फिरैं॥

यह उड़नखटोलीवालियाँ जो अधर में छत सी बाँधे हुए थिरक रही थीं, भर भर झोलियाँ और मूठियाँ हीरे और मोतियाँ से निछावर करने के लिये उतर आइयाँ और उड़न-खटोले अधर में ज्यों के त्यों छत बाँधे हुए खड़े रहे । और वह दूल्हा दूल्हन पर से सात सात फेरे वारी फेरे होने में पिस गइयाँ । सभों को एक चुपकी सी लग गई । राजा इन्दर ने दूल्हन की मुँह दिखाई में एक हीरे का एक डाल छपरखट और एक पेड़ी पुखराज की दी और एक पारिजात का पौधा जिसमें जो फल चाहो सो मिले दूल्हा दूल्हन के सामने लगा दिया । और एक कामधेनु गाय की पाठिया बछिया भी उसके पीछे बाँध दी और इक्कीस लौड़ियाँ उन्हीं उड़नखटोलेवालियों में से चुन के अच्छी से अच्छी सुथरी से सुथरी गाती बजातियाँ सीतियाँ पिरोतियाँ और सुघर से सुघर सौंपी और उन्हें कह दिया 'रानी केतकी छुट उनके दूल्हा से कुछ बात चीत न रखना नहीं तो सब की सब पत्थर की मूरतें हो जावोगी और अपना किया पावोगी' । और गोसाईं महेन्दर गिर ने बावन तोले पाव रत्ती जो उसकी इक्कीस चुटकी आगे रक्खी और कही "यह भी एक खेल है जब चाहिये बहुत सा ताँबा गला के एक इतनी सी चुटकी छोड़ दीजे कंचन हो जायगा' । और जोगीजी ने सभों से यह कह दिया 'जो लोग उनके ब्याह में जागे हैं उनके घरों में चालीस दिन

चालीस रात सोने की नदियों के रूप में मनी[1] बरसे । जब तक जिएँ किसी बात की फिर न तरसे ।' नौ लाख निन्नानबे गायें सोने रूपे के सिंगौरियों की जड़ाऊ गहना पहने हुए घुँघरू छमछमातियाँ महंतों को दान हुईं । और सात बरस का पैसा सारे राज को छोड़ दिया गया । बाइस सै हाथी और छत्तीस सै ऊंट रुपयों के तोड़े लादे हुए लुटा दिया । कोई उस भीड़भाड़ में दोनों राज का रहने वाला ऐसा न रहा जिसको घोड़ा जोड़ा रुपयों का तोड़ा जड़ाऊ कपड़ों के जोड़े न मिले हों । और मदनबान छुट दूल्हा दूल्हन पास किसीका हियाव न था जो बिन बुलाए चली जाए । बिन बुलाए दौड़ी आए तो वही आए और हँसाए तो वही हँसाए । रानी केतकी के छेड़ने के लिए उनके कुँवर उदैभान को कुँवर क्योड़ाजी कहके पुकारती थी और ऐसी बातों को सौ सौ रूप से सँवारती थी ।

दोहा ।

घर बसा जिस रात उन्हों का तब मदनबान उस घड़ी ।
कह गई दूल्हा दुल्हन से ऐसी सौ बातें कड़ी ॥
जी लगा कर केवड़े से[2] केतकी का जी खिला ।
सच है इन दोनों जियों को अब किसी की क्या पड़ी ।

---

१ पाठा० टिड्डियों के रूप में हुन ।
२ पाठा० बास पाकर केवड़े की ।

क्या न आई लाज कुछ अपने पराए की अजी ।
थी अभी उस बात की ऐसी भला क्या हड़बड़ी ॥

मुसकिरा के तब दुल्हन ने अपने घूंघट से कहा ।
मोगरा सा हो कोई खोले जो तेरी गुलझड़ी ॥

जी में आता है तेरे होठों को मलवा लूं अभी ।
बल बे ऐ रंडी तेरे दाँतों के मिस्सी की घड़ी ॥

इति